

बी बी बोरकर

भूमि कन्या सीता

लेखक
भार्गवराम विट्ठल वरेरकर

अनुवादक
र० श० केलकर, एम० ए०

१९५९
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली ६

लेखक के अन्य नाटक

अ-पूर्व बंगाल	निशापुर से
भूमि कन्या माता	सारस्वत
कन्या के लिए	बड़ी घर का बाग
	सन्यासी का संसार
प्रेस में	मजदूरों का राज
	शिवा-शिवा
द्वारकाधीश	प्रणय का भय
समता के अधिकारी	कोरी करामात
स्वयं-सेवक	

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड दिल्ली

मूल्य-१॥)
१९५०

प्रस्तावना

अपनी विद्यार्थी अवस्था में मैंने मालवराज की एक स्थानीय नाटक मंडली के लिए 'उत्तर रामचरित' नाटक का संगीत अनुवाद किया था। यद्यपि वह नाटक अभिनीत होने का सौभाग्य मुझे नहीं मिल सका तथापि उससे वाल्मीकि की लिखी हुई रामकथा से अन्य रामकथाओं की तुलना करने की प्रवृत्ति मुझमें अवश्य उत्पन्न हुई।

प्रचलित रामकथा और वाल्मीकि की रामकथा कहीं भी मेल नहीं खाती। विशेषतया अध्यात्म रामायण भुशुंडिरामायण आनंद रामायण आदि रामायणों की कथाओं तथा वाल्मीकि की रामकथा में विसंगति है। केवल कालिदास का रघुवंश वाल्मीकि से मेल खाता है। इतना ही नहीं उसमें रामकथा के कुछ नए और अविपर्यस्त प्रसंग भी पाए जाते हैं। प्रस्तुत नाटक में मैंने वाल्मीकि रामायण एवं रघुवंश की कथाओं का ही आधार लिया है।

भास—कालिदास से लेकर अण्णासाहब किर्लोस्कर तक सभी पूर्व आचार्यों ने नाटक लिखते समय पौराणिक कथानकों में अभिनय की दृष्टि से आवश्यक फेरफार करने की प्रथा चलाई थी। प्रस्तुत नाटक में इस प्रकार का रचना स्वातन्त्र्य यद्यपि मैंने अधिक नहीं लिया है फिर भी शम्बूक-काल और उर्मिला का निर्माण इन दो बातों में मैंने पूर्व आचार्यों का अनुसरण किया है। तथापि ऐसा करते समय उससे वाल्मीकि कथा में कहीं भी असंगति उत्पन्न न होने देने की मैंने पूरी-पूरी सावधानी बर्ती है।

नाट्य निकेतन के मोतीराम रांगणेकर ने जब मुझसे इसी कथानक को लेकर नाटक लिखने का अनुरोध किया तब अपना पुराना संकल्प पूर्ण होने का अवसर आया जान मैंने फिर एक-बार रामकथा नामी सारे ग्रन्थ ध्यान

डाली। जुलाई १९५० में यह नाटक लिखा गया और नाट्य निकेतन संस्था ने उसी वर्ष विजया दशमी के दिन इसकी रिहर्सल आरम्भ की। किन्तु अब तक यह नाटक मराठी रंगभूमि पर न आ पाने के कारण मेरे कई मित्रों के अनुरोध से आज यह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहा है। जिस समय यह नाटक मराठी रंगभूमि पर आएगा उस समय मेरे विस्तृत विवेचन तथा [illegible] की प्रस्तावना के साथ इसकी रंगाकृति प्रकाशित होगी।

दिल्ली के वेस्टर्न कमाण्ड के सैनिकों ने मेजर हेमचन्द्र गुप्ते के अमूल्य दिग्दर्शन में इस नाटक को १९५१ में हिन्दी में अभिनीत किया जो बहुत ही सफल रहा।

श्री रामलाल पुरी ने मेरे अन्य प्रतिनिधि नाटकों के साथ-साथ इस नाटक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का जो पुनः भार स्वीकार किया है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

साथ ही श्री र० अ० केलकर को भी जिन्होंने अपने खास काम में व्यस्त होते हुए भी मेरे नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करने का दायित्व अपनाया है धन्यवाद देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

हाजी कासम वाडी — मामा वरेरकर

१५ अगस्त १९५६

प्रस्तुत नाटक के पात्र

विजय
कुब्जिका
सुमन्त
वासन्ती
सीता
राम
उर्मिला
लक्ष्मण
शम्बूक
राजपुरुष
वाल्मीकि

भूमि कन्या सीता

पहला अंक

[दूर रामस्तुति परक वैतालिक बुलाई पढ़ रहा है। राम का आराम गृह। पीठिकाएं ठीकठाक करने में विजय और कुब्जिका व्यस्त हैं। दूर से बुलाई पढ़ने वाले स्तोत्र की ओर उनके कान लगे हुए हैं। स्तोत्र समाप्त होते ही काम छोड़ कर दोनों नमस्कार करते हैं। कुब्जिका जब फिर से काम करने लगती है तब विजय दरवाजे तक जाकर झांक कर बाहर देखता है और लौट आता है।]

विजय—जरा जल्दी करो कुब्जिका बुआ ? राज सभा अभी-अभी समाप्त हुई है। अब रामचन्द्र जी सीधे इधर ही आएंगे। कितने सालों के बाद आज उनके चरण इस आरामगृह को लगेंगे।

कुब्जिका—आज ? राज्याभिषेक होकर इतने महीने हो गए फिर भी अभी तक प्रभु रामचंद्र अपने आरामगृह में नहीं आए ?

विजय—आते तो तुम्हें न पता लगता ! चारों ओर से इतने अतिथि गण आए हुए थे। यद्यपि मुनी राजे रजवाड़े तो आए ही थे—इसके सिवा यह वानर सेना विभीषण के राक्षसगण—सारी अयोध्या नगरी जैसे भर सी गई थी। आज कैसा सूना-सूना सा लग रहा है सारे अतिथि चले गए। आज ही राजा जनक की सवारी ने मिथिला नगरी की ओर प्रस्थान किया है तब जाकर श्रीरामचन्द्र जी को इधर आने का अवकाश मिला है।

कुब्जिका—अतिथियों की आवभगत के कारण हम इधर ध्यान ही कब दे पाते थे ? जब से यहाँ आई हूँ सीतादेवी को भी क्षण भर के लिए फुरसत नहीं। पहिली बार ही उन्हें देखा। वनवास की तो हमने सुनी

हुई बातें हैं। मैं जरा सी थी जब उन्होंने वनवास लिया था। उर्मिलादेवी से रोज़ सुना करती थी ये बातें—

विजय—अब इस विषय में कुछ न कहो—समझी ? उन अशुभ बातों का अब उल्लेख भी नहीं करना चाहिए। अब राम राज्य शुरू हो गया है। चारों ओर आनंद ही आनंद है। इतने सालों के बाद जाकर कहीं मुझे प्रभु के कपड़े धोने को मिले हैं। मेरा हृदय जैसे आनंद से भर उठा है लगता है मानो मेरा भाग्य जाग पड़ा है। इतने सालों से वल्कल धारण करने वाले प्रभु के शरीर पर अपने हाथ से धोया हुआ महावस्त्र पहनाते समय मुझे लगा मानो मेरा जन्म सार्थक हो गया।

कुब्जिका—बड़े भाग्यवान हो तुम विजय। ईर्षा होती है मुझे तुमसे और तुम्हारी पत्नी—वासंती से भी। प्रत्यक्ष सेवा हो रही है तो तुम्हारे हाथों। सीता-राम के शरीरों पर तुम्हारे हाथों वस्त्र चढ़ते हैं। आज प्रभु यहां आएंगे — ।

[सुमंत प्रवेश करता है। सुमंत महल का पुराना कार्यकर्ता है। वह काफ़ी बूढ़ा है। उसके आते ही दोनों उसे नमस्कार करते हैं। अंदर आते ही वह एक बार चारों ओर नजर करता है।]

सुमंत—सब ठीकठाक हो गया है न विजय ?

विजय—आप देख ही रहे हैं।

सुमंत—हां—देख रहा हूं।—पर बुढ़ापे के कारण मेरी नजर धुंधली हो गई है। चौदह साल से इन आंखों से बराबर पानी चू रहा था—मैं ही तो उन्हें सीमा पार पहुंचाने गया था ?—उस पाप का प्रायश्चित आंसुओं से अर्घ देकर कर रहा था। अब राज्याभिषेक हुआ है—उस समय का वह राज्याभिषेक वैसा ही रह गया था—उसी सामग्री से चौदह वर्षों के पश्चात अब यह अभिषेक हुआ है। आंसुओं का व्रत पूरा हुआ। इतने सालों के बाद आज प्रभु आज इस आरामगृह में आने वाले हैं—उनके चरण यहां पड़ते ही ये चौदह साल मिट जाने चाहिए ! समझे विजय ?

विजय—आपकी बात ठीक से नहीं समझ पाया सुमंत जी।

सुमंत—इस आरामगृह को सजाने के लिए तुम्हीं से क्यों कहा था विजय?

विजय—इसी बात का मुझे आतंक है। और सभी लोगों को छोड़ कर मुझ पर यह काम सौंपा गया है, इस बात पर सभी को आश्चर्य हो रहा है।

सुमंत—चौदह वर्ष पूर्व जब प्रभु ने इस प्रासाद से प्रस्थान किया था तो इसी आरामगृह से। यहीं उन्होंने अपने वस्त्र त्याग कर वल्कल धारण किए थे। वे वस्त्र उठाने के लिए तुम आए थे। तुम्हारी स्मरण शक्ति को मैं परखना चाहता हूँ विजय!

विजय—कैसी कसौटी?

सुमंत—चौदह साल पहले इस आरामगृह की जैसी सजावट थी वैसी ही आज प्रभु को दिखाई देनी चाहिए। इसीलिए मैंने कहा था कि यहाँ पैर पड़ते ही चौदह वर्ष मिट जाने चाहिएं—

विजय—सुमंत जी स्वयं ही एक बार देख लें।

सुमंत—यही तो मेरे लिए कठिन है! अब पहिले सा नहीं सूझता इसीलिए तो तुम पर यह काम सौंपा है? ध्यान से देखो। कहीं ज़रा भी अन्तर न दिखाई पड़े। जाऊँ मैं? (जाने लगता है ठहर कर) और देखो विजय और तुम भी कुंधिका प्रभु राम और सीता देवी यहाँ आते ही तुम दोनों यहाँ से चले जाना—समझे? उनके पहले न जाना। यहाँ आते ही जो कुछ वे कहें उनके वे प्रथम उद्गार आकर मुझे बताना—आया समझ में?

[जाता है। विजय बीचोबीच खड़ा होकर एक बार अच्छी तरह से निरीक्षण करता है।]

विजय—अब बताओ कुंधिका सब ठीकठाक हो गया न?

कुंधिका—यह मैं कैसे कह सकती हूँ? उस समय मैं कहाँ थी यहाँ?

विजय—हाँ— यह भी ठीक है। बासंती कहाँ गई ? उसकी स्मरण शक्ति की परीक्षा लेनी थी मुझे।

कुशिका—इस समय वह यहाँ कहाँ। बराबर सीतादेवी के साथ छाया सी घूम रही है। देखती भी नहीं हमारी ओर।

विजय—और मेरी ओर भी नहीं देखती है ? (देखते-देखते चौंक कर एक पीठिका की ओर जाता है और उसके आसन की ओर देखकर) यह दाग ! कैसा रह गया यह दाग ? यह आसन किसने धोया था ? बासंती ! बासंती !—

कुशिका—वह क्यों इस समय यहाँ आने लगी। आएगी महारानी के साथ !

विजय—यह दाग ! यह दाग रहने दूं तो फिर मैं धोबी कैसा ? (बासंती आती है।) यह दाग ! बासंती यह आसन किसने धोया था ? यह दाग यहाँ कैसे रह गया ?

बासंती—मैंने पूरा प्रयत्न किया पर यह दाग नहीं निकला।

विजय—कहती हो पूरा प्रयत्न किया ! बार-बार क्यों न धोया ? अच्छी तरह क्यों नहीं रगड़ा ?

बासंती—और अधिक रगड़ती तो फट न जाता आसन ?

विजय—फट जाता ! पर दाग तो चला जाता !

कुशिका—इसीलिए शायद कपड़े फाड़ा करते हो तुम लोग ?

विजय—हाँ हाँ इसीलिए ! कपड़ा फट जाना स्वीकार है पर दाग नहीं रहना चाहिए। अच्छा यह आसन। (आसन खींचकर निकालता है।)

कुशिका—पर दूसरा आसन भी तो ऐसा ही होना चाहिए न ?

विजय—हाँ सच ! ऐसा ही होना चाहिए (बासंती से) है कोई ऐसा दूसरा आसन ?

बासंती—यही तो उस समय का आसन है ऐसा ही और दूसरा आसन अभी कहाँ मिलेगा ? उनके आने का समय हो गया है—(चौंकती सी) वैसे यह दाग किसी को दिखाई न देगा—

विजय—पर मुझे दिखाई दिया !

कुमिका—चोरी की नजर जो है—और किसी का ध्यान नहीं जायगा—देवता का भी नहीं !

विजय—ना ना यह ठीक नहीं !

वासंती—मैं बताती हूँ एक उपाय ।

विजय—नहीं नहीं यह दाग निकलना ही चाहिए ।

वासंती—दिखाई न दे तब तो हो गया ? इसके ऊपर एक कृष्णाजिन डाले देती हूँ—

विजय—नहीं नहीं उससे अन्तर दिखाई देगा—

वासंती—बिल्कुल नहीं मुझे अच्छी तरह याद है कि जिस समय प्रभु यहाँ वल्कल धारण कर रहे थे उस समय एक कृष्णाजिन यहीं रक्खा हुआ था यह उनके जाते समय यहीं रह गया था। उसे लेकर मैं स्वयं प्रभु के पीछे गई थी ।

विजय—तुम्हें अच्छी तरह याद है ?

वासंती—मैं ही तो ले गई थी । उनके जाने के पूर्व कृष्णाजिन यहीं था ।

विजय—तो जाओ और एक कृष्णाजिन ले आओ —झटपट ले आओ उनके ध्यान का समय हो गया है ।

[वासंती जाती है । कुमिका और विजय फिर से आसन बिछाते हैं ।]

कुमिका—दाग छिपाने के लिए कृष्णाजिन का आवरण बड़ा अच्छा है!

विजय—क्या कहा ?

कुमिका—नहीं मैंने कहा कि कृष्णाजिन ऊपर बिछाने से दाग नहीं दिखाई देगा । चिंता मुझे इतनी ही है कि कृष्णाजिन देखते ही कहीं प्रभु के वल्कल धारण की याद न आ जाय ।

विजय—(झिलमिलाकर) दाग ! दाग ! दाग ! कैसे रह गया यह दाग ? (वासंती कृष्णाजिन लेकर आती है।) अब तुम ही रक्खो इसे जैसा यह उस समय था ।

कुब्जिका—अच्छी याद रही तुम्हें वासंती। नहीं तो इस दाग के कारण सारा काम बिगड़ जाता।

विजय—दाग के कारण बड़े उत्पात हो रहे हैं इस संसार में। इसी-लिए कहता हूँ कपड़ा फट जाना अच्छा है पर दाग न रहना चाहिए—

[वासंती पीठिका पर कृष्णाजिन बिछाती है।]

कुब्जिका—यों टेढ़ा-तिरछा क्यों बिछा रही हो ?

वासंती—उस समय यह ऐसा ही पड़ा हुआ था। मुझे अच्छी तरह याद है। (दो कदम पीछे हटकर अच्छी तरह से निरीक्षण करके) अब *बिलकुल ठीक है कोई भी न जान सकेगा।*

विजय—कितना ही यत्न क्यों न करो यह दाग आज नहीं तो कल दिखाई पड़ ही जायगा। और तब मैं कहीं का न रहूँगा। ठहरो सभी आकर वे आ गए!

[सीता प्रवेश करती है। उसके शरीर पर नख शिख तक जरी के कपड़े और सोने रत्न के आभूषण हैं। मस्तक पर किरीट है। वह अन्दर आती है और एकदम ठहरकर चौंककर चारों ओर देखती है। *उसके आते ही विजय वासंती और कुब्जिका एकदम पीछे हटकर कोने* में हो लेते हैं तत्पश्चात् आगे बढ़कर जमीन पर माथा टेककर नमस्कार करते हैं। सीता के 'उठो' कहते ही उठकर हाथ जोड़े एक ओर खड़े हो जाते हैं।]

सीता—स्वप्न तो नहीं है! वे आसन उनका बिछावन वे तकिये सब कुछ वैसा का वैसा ही है! कुछ भी अन्तर नहीं हुआ! क्या यह ऐसा ही रक्खा हुआ था? इन चौदह वर्षों में क्या किसी ने भी इस सामान को नहीं छुआ? (विजय से) तुम कौन हो?—अरे विजय ही हो न तुम? और यह वासंती तुम्हारी पत्नी—(वे दोनों नमस्कार करते हैं।) और यह कौन है? कोई नई जान पड़ती है।

वासंती—जी नई ही है। आपकी दासी बनने आई है। (कुब्जिका नमस्कार करती है) देवी की इसपर कृपादृष्टि हो।

सीता—सब ज्यों का त्यों है—सभी यथास्थान है—कहीं भी कोई अन्तर नहीं हुआ है। मारे आह्लाद में उलट-पुलट हो गई है—पराए सा लग रहा था मुझे—यहाँ आई और वह सारा परायापन लुप्त हो गया। चौदह वर्ष जैसे एकदम धुल गए हों। (हंसकर) पर तुम बदल गए हो विजय! वेश वही है पर चेहरा बदल गया है। काफी प्रौढ़ दिखाई दे रहे हो।

विजय—मैं अब बूढ़ा होने लगा हूँ देवी!

सीता—नहीं नहीं बूढ़ा नहीं प्रौढ़! तुम्हें बूढ़ा कहूँगी तो वासंती रूठ जायगी।

वासंती—मैं भी तो बूढ़ी हो चली हूँ देवी।

सीता—न न तुम्हें बूढ़ी कौन कहेगा? समवयस्क ही तो हैं हम दोनों—

वासंती—ऐसा नहीं कहते देवी—

सीता—क्यों नहीं कहते? यह सच नहीं है? दो दश से अधिक वर्ष हो गए, तुम और मैं इस अयोध्या में आई थीं तब से कितना परिवर्तन हुआ है इस अयोध्या में!

वासंती—अब उन सबकी चर्चा न कीजिए देवी।

सीता—सचमुच! अब उन सबकी चर्चा नहीं करनी है। इस प्रौढ़ावस्था को अब हमें भूल जाना चाहिये। छोटों से भी छोटा बन जाना चाहिए। इसे भी—क्या बताया इसका नाम ... कृत्तिका है न यह? इसे भी लगे जैसे हम सब समवयस्क हैं।

कृत्तिका—मुझे ऐसा ही लग रहा है देवी!

सीता—अच्छा? यहाँ का आत्मीयपन शायद तुम अभी से सीख गयी।

कृत्तिका—नहीं देवी सचमुच मुझे ऐसा ही लग रहा है। मैंने सोचा था न जाने कितनी बड़ी होंगी हमारी मालकिन पर बिल्कुल निकट से देखा है—ऐसा लगा—(रुकती है)।

सीता—कैसा लगा ?

कमिका—ऐसा लगा — कैसे कहूँ !

सीता—ऐसा लगा कि राम की सीता तुम्हीं हो नन्हीं लड़की है क्या ?—(वह सकारात्मक सिर हिलाती है।) यह बात है ! बड़ी सुन्दर लगी है यह कमिला क्यों बोलती ?—इस तरह मैं कुछ न कहूँ की कुमिका समझी ! मैंने बहुत कष्ट देखा है अयोध्या से लेकर लंका तक सब कुछ देखा है। ऋषियों के आश्रम की तुम जैसी व छोटी छोटी बालिकाएँ—कितना प्रेम करती थी सत्कार !—वे तुम जैसी बुद्धिमती न थीं ! मुझे अनादर अच्छा नहीं लगता समझी ! मेरे सामने ऐसी बातें न किया करो—

विजय—यह अभी छोटी है। कोई और न था यहाँ जब यह आई थी। अब सारा पुष्पवन् हो गया है। अब यह अपने आप समझ जायगी।

सीता—लेकिन यह तुम एक बूढ़े की भाँति कह रहे हो।

विजय—पर बूढ़ा तो हो ही गया हूँ देवी।

सीता—ऐसा न कहो अब यह रामराज्य है। अब यहाँ कोई भी वृद्ध नहीं होगा। (इधर उधर घूमकर) आज मुझे कितना आनन्द हो रहा है। लगता है जैसे अभी अभी आई हूँ यहाँ मिथिला नगरी से नई बहू बन कर ! कितना चाहते थे मुझे उस समय सब लोग ? अब कैसे भूल गए हैं सब ? इस तरह करते रहे हैं जैसे मैं बूढ़ी हो गई हूँ। सब भूल जाऊँगी अब मैं ! ऐसा लग रहा है जैसे बालक से भी छोटी बन गई हूँ। जी चाहता है पहले सी नाचूँ खेलूँ हँसूँ और इन सहेलियों को लेकर—(कामंती और कुमिका दोनों को दोनों ओर से अपने निकट खींचती है।)—निरंतर खेलती कूदती रहूँ !

विजय—है है देवी यह क्या ! दासियाँ हैं ये।

सीता—मैं भी दासी हूँ—रामराज्य के चरणों की दासी !

विजय—अयोध्या की साम्राज्ञी हैं आप !

सीता—साम्राज्ञी हूँ राजसभा में। यहाँ नहीं। यहाँ मुझे मनुष्य सा

रहने दो। गत चौदह वर्षों में छोटे-बड़े का यह भेद मेरे मन में नहीं आया था। तो अब क्यों आए ?—तुम चुप रहो विजय। तुम्हें इनसे ईर्ष्या हो रही है क्यों ? यह सब कुछ नहीं म यहाँ इन्हें यों ही निकट लेकर बात-चीत थी !

[वासंती और कुटिला को लिए सीता आती जाती उछलती-कूदती है तभी राम प्रवेश करते हैं। विजय उसके पैर पीछे हटता है और वासंती को इशारा करता है। वासंती और कुटिला की दृष्टि राम पर पड़ती है। वे चौंककर सीता को छोड़कर एक ओर हट जाती हैं तभी सीता भी राम की ओर देखकर दूर हटती है।]

राम—यह क्या हो रहा था ?

सीता—यह आपकी लाड़ली सीता का बचपन था। देख लिया न जैसा था वैसा ही बना हुआ है यह आराम गृह जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ है यहाँ।

राम—सच ! जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ है यहाँ—परिवर्तन इतना ही हुआ है कि हम प्रौढ़ हो गए हैं। तब हम पिता की छत्रछाया में छोटे थे। अब यह बाल्यावस्था बीत गई, युवावस्था बीत गई प्रौढ़ावस्था की चढ़ती सीढ़ी पर हम लोग खड़े हैं यही समझ रहा था तब ! पर यहाँ पैर रखते ही सब कुछ भूल गया। तब तुम दास-दासियों के साथ यों ही उछला कूदा करती थीं और बड़े बूढ़े कहते थे कि तुम्हें अपनी मान-मर्यादा का विचार नहीं।

सीता—उस समय आपने ऐसी बात कभी नहीं कही थी।

राम—मैं वैसा नहीं समझता था और इसीलिए अभी मेरा हृदय झूम उठा। चौदह साल एकदम मिट गए से प्रतीत हुए। किसने सजाया है यह आरामगृह ?

सीता—इस विजय ने। क्यों विजय ? (विजय नमस्कार करता है।) कितनी अचूक स्मरणशक्ति है इसकी। देखिए इधर देखिए, हम वनवास के लिए जा रहे थे यहीं हमने वल्कल धारण किए थे और यह इन्द्रमणि

यहीं पड़ा रह गया था—अब याद आ रहा है मुझे—कैसे याद रहा भी तुम्हें विजय ?

विजय—यह याद इसकी—इस वासंती की है—(वासंती नमस्कार करती है।) मरी नहीं।

राम—देख लो कितना सरलाग्रही है विजय ! इसका तनिक भी श्रेय यह नहीं छीनना चाहता।

विजय—रामराज्य है यह। यहाँ किसी के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए।

राम—सुन ला देवी !

सीता—सुन रही हूँ—और देख भी रही हूँ। यही परिवर्तन इस राज्य में हुआ है। नये राज्य की नयी आसक्ति पैदा हुई है सब में।

राम—पर तुम्हीं को उसका विस्मरण हो गया है। यदि अभी कोई नहीं आया है तो तुम। इन बालियों को लेकर नाच रही थी। रानी हो तुम इस अयोध्या की।

सीता—मैं भी इन चरणों की ही दासी हूँ।

विजय—(एकदम आगे बढ़कर हाथ जोड़ते हुए) नाथों को माला मिले।

[विजय वासंती और कुमारिका भूमि पर मस्तक टेककर नमस्कार करके उन्हें कदमों से पीछे हटते हुए चले जाते हैं।]

सीता—देखिये वे समझ गए ! मैं ऐसी बावली हो गई थी—अपने आप को भूल गई थी—जान पड़े राम की जगह राजाराम मुझे दिखाई पड़े। थोड़ा पड़ा मन ही मन। भूली हुई क्रीड़ावस्था एकदम याद आ गई—यहाँ के भी अबाध गए। कल भी हा पर बड़े बड़े समझदार होते हैं इसी लिए वे बन लिए।

राम—और हम क्या मूर्ख हैं ?

सीता—कौन कहता है कि आप मूर्ख नहीं हैं ? क्रीड़ावस्था को याद दिलाने के लिए शिशु कहाँ रेंग रहे हैं इस घर में ? याद आई है आप को। पर एक भी रेंगता हुआ शिशु नहीं दिखाई नहीं देता। आप क्यों

कर समझें कि आप प्रौढ़ हैं ?

राम—(हँसकर उसके मुख की ओर देखते हुए) और फिर सती अनसूया के अंगराग के कारण तुम्हारा अटल यौवन—

सीता—किसी भी सती के अंगराग के अतिरिक्त अखंड यौवन से युक्त विराजमान होने वाले मेरे राम—(राम के दोनों हाथ पकड़ कर) ऐसा लगता है, बताऊँ ? नाराज तो न होंगे ?

राम—कहो न ।

सीता—ऐसा लगता है मानो मिथिला से हम लोग पहली बार ही यहाँ आए हों । प्रथम भेंट के उत्साह से मेरा हृदय फूल उठा था । सारा भेदभाव भूल कर किस प्रकार अठखेलियाँ करते थे हम लोग तब ? उस समय भी ऐसा ही वेष बदला था । तब विश्वामित्र के यहाँ का तपस्वी वेष बदल कर आपने ऐसे ही राजाभूषण धारण किए थे । अब यह वन वासी वेष बदल कर हम लोग राजा रानी बन गए हैं । (उसकी ओर देखकर) क्या हम इस बचपन को भुला नहीं सकते ? यहाँ कोई भी नहीं है । आइए कुछ देर पहले की भाँति अठखेलियाँ कर लें हम लोग ।

राम—यह कह क्या रही हो देवी ?

सीता—नहीं स्वामी आज इतने वर्षों से 'सीता सीता' कह कर कानाफूसी करने वाले राम के मुँह से 'देवी' सम्बोधन शोभा नहीं देता ।

राम—तो क्या कहूँ ?

सीता—अब तक क्या कहा करते थे ?

राम—वह सम्बोधन वनवासी राम का था ।

सीता—और उसके पूर्व बारह वर्ष ?

राम—वह अयोध्या का युवराज था । पिता की वृद्धावस्था में राजा पद से अनभिज्ञ दशरथ का पुत्र राम—सीता का पति राम—

सीता—और अब जो बोल रहे हैं वे अयोध्या के सम्राट् हैं क्यों ? अयोध्या के युवराज थे राम कितने भावुक थे । वनवासी राम एवं सीता का सर्वस्व थे अभिन्न थे । वनवास का वह रामराज्य सीता और राम का राज्य था ।

राम—और यह राम का राज्य है यही न तुम्हारे कहने का अभिप्राय है ? तुम इस राम राज्य की साम्राज्ञी हो। (सीता चुप रहती है।) क्यों बोलती क्यों नहीं ?

सीता—न जाने क्या हो गया ! आपके यह उद्गार सुनकर मन अजीब धक्का सा लगा। यह राजसिंहासन राजवैभव का यह सुवर्ण छत्र देश परदेश के राजाओं का नतमस्तक होना ऋषि मुनियों से दी हुई आशीष पुरजनों के ये स्नेहाभिषेक ! (जरा ठहर कर)—और उस समय का वह वनवास—चौदह वनवास—(सीता कृष्णाजिन पर बैठ जाती है। राम उसके पास आसन पर बैठते हैं। सीता उस कृष्णाजिन पर हाथ फेर रही है) रामचन्द्र, याद आता है इस कृष्णाजिन पर हाथ फेरते हुए, इस मृगचर्म की शैय्या पर ही तो हमने सारा वनवास बिताया था। यही हमारा आसन था यही हमारे शरीरों की छाया था यही हमारी शय्या था और इन्हीं मृगों ने तो अपनी जान खोकर—अपने शरीर का भोजन देकर हमें उस वनवास में जीवित रक्खा था !

राम—और क्या ऐसे ही मृग चर्म के लोभ के कारण हम नहीं बिछुड़े थे ?

सीता—वह सुवर्ण मृग था। उस सुवर्ण के लोभ के कारण मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। और मृगचर्म के लाभ के कारण हम नहीं बिछुड़े थे !—बिछुड़े थे सुवर्ण के लाभ के कारण ! सुवर्ण की कंचुकी पहनने का लोभ मुझे वनवास में हुआ इसीलिए हम लोग बिछुड़ गए। केवल सुवर्ण मृग के चर्म की ही नहीं लेकिन जिस समय सच्चे सोने के पानी की कंचुकी पहनकर मैं उस सुवर्ण सिंहासन पर बैठी जिस समय सुवर्ण का छत्र इस मस्तक पर जगमगाने लगा सुवर्ण के चामर सुन्दरी दुरा करने लगे सुवर्ण के घट हाथ में लिए पौराणिक मनहर गुणगान करने लगे उसी समय मुझे उस सुवर्ण मृग की याद आ गई। राज्याभिषेक के आनंद से रोमांचित होने के बजाय मेरे समस्त शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए। (एक निश्वास छोड़कर मृगचर्म पर हाथ फेरती है) कितना

सुन्दर है यह मृगचर्म ! कितना मोहक ! कितना मधुर ! कितना स्निग्ध है यह स्पर्श ! आश्रम के आसपास क्रीड़ा करने वाले उन मृग शावकों की कितनी याद आती है मुझे !—

राम—बड़े आश्चर्य की बात है ! यह वैभव तुम्हें नहीं सुहाता ?

सीता—नहीं जी नहीं ! मुझे इस वैभव से घृणा है। इस सुनहरे वैभव से मुझे उस सुवर्ण मृग की याद आ जाती है और तब जी व्याकुल होने लगता है। इसी तरह उस राक्षस का वैभव था! जान बूझकर उसने मेरे सामने अपने वैभव का प्रदर्शन किया और इसीलिए मैं उस अशोक वन में रही—केवल वृक्षों की छाया में आकाश के नील-मंडप के नीचे—स्वच्छ पवन मेरे ऊपर चँवर डुलाया करता था। आसपास वे राक्षसियाँ न होतीं तो लगता जैसे मैं जनस्थान के आश्रम में ही रह रही हूँ। कैसे बिताए वे भयंकर छः महीने ! वैभव की पैशाचिक वायु चारों ओर चल रही थी इसीलिए अपने प्राण चुराए बैठी थी उस अशोक की छाया में !—वैभव ! राज विलास ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं !

राम—आज तुम्हें हो क्या गया है सीता ? सो योजनों के परकोटे बिछाकर रावण सहित लंका का जो विध्वंस किया गया वह क्या फिर से वनवास लेने के लिए ? चौदह वर्ष पूर्व यह राज्याभिषेक होना था। अयोध्या की जनता चातक की भांति जिस क्षण की बाट जोह रही थी वह राज्याभिषेक हो गया स्वास्थ्य प्राप्त हुआ समृद्धि मिली निष्कंटक भूमि का राज्य प्राप्त हुआ और तुम कहती हो—

सीता—ठहरिए, मैं कुछ भी नहीं कहती। मैं अपने आप से ही बातें कर रही थी। इस मृगचर्म ने पुरानी याद जगा दी। वनवास की वे बातें याद आ गईं। आप मृगया किया करते थे और मैं उस शिकार को रांध कर परोसा करती थी। किसी भी बात की चिंता न थी। अतिथि थे ऋषि मुनि ! एक ही काम था एक दूसरे के परस्पर सहवास में स्वर्ग सुख के आनंद का अनुभव करना ! अब यह राज्य मिल गया है पर सुख समाधान से क्षण भर आपस में बात करना भी कठिन हो गया है।

हमेशा राजसभाएँ, हमेशा फरियादें प्रार्थनाएँ, अनवरत निपटाना न्याय करना निकट बैठी प्यारी पत्नी की याद भूल कर प्रजा के झमेलों में समय बिताना !

राम—'स्वयं ब्रह्मा भी स्त्री हृदय की थाह नहीं पा सकता' यह जिस किसी ने कहा है झूठ नहीं है। हाँ यह ठीक है कि राजकाज में मुझे व्यस्त रहना पड़ता है, क्षण भर तुम से दूर रहना पड़ता है—

सीता—क्षण भर क्यों ? सारा दिन !

राम—हाँ सारा दिन ! तो क्या इतने बड़े राज्य की प्रजा का अनुरंजन नहीं करना चाहिए ? इस अनुरंजन के कारण ही न प्रजा मुझ पर प्रसन्न है ? मैं उसके काम के लिए तत्पर रहता हूँ इसीलिए न प्रजा कहती है कि रामराज्य आ गया है ? तुम्हें अभिमान होना चाहिए इसका।

सीता—इसका मुझे स्वाभिमान है पर अभिमान तनिक भी नहीं ! सारे तेरह साल हम लोग एक दूसरे को क्षण भी नहीं भूलते थे। फिर वह वियोग काल आया—

राम—कितना विकट था वह वियोग-काल ! 'सीता सीता !' पुकारता वृक्ष-लताओं का आलिंगन करता मैं उस समय वनों में मारा मारा घूम रहा था। लक्ष्मण भी मेरी सान्त्वना नहीं कर पा रहा था। वह बिचारा भी मुझ सा ही पागल हो उठा था। हनुमान से भेंट हुई उसने तुम्हारा पता लगाया तब वानर नहीं मैं मनुष्यों से लौटा और अब हम यहाँ हैं। वियोग की कल्पना भी मिट गई !

सीता—क्या सचमुच वियोग की कल्पना मिट गई ?

राम—यह बात तुम पूछ रही हो सीता ?

सीता—वह याद मुझे न भूलेगी जब रावण मारा गया मैं मुक्त हुई हनुमान मुझे अपने साथ लिवा लाए तब आपने कितनी कठोर बातें कही थीं—

सीता—मैंने अग्नि परीक्षा दी जलती हुई आग की कसौटी पर खरी उतरी। मुझे लगा जैसे वियोग अब समाप्त हो गया है। आश्रम का वह आनंद फिर से मिलेगा लगा था कि इस मोह की मृत्यु में से नवजीवन का उदय होगा—(चुप रहती है।)

राम—तो क्या वह नहीं हुआ ?

सीता—क्या आप समझते हैं कि उस आश्रम का आनन्द फिर से प्राप्त हुआ है ? (राम चुप रहते हैं।) देख लीजिये आपके मुंह से 'हाँ' नहीं निकलता। वैसा जब हुआ ही नहीं तो हाँ कोई कैसे कहे ? फिर भी वह प्रत्यक्ष वियोग था। यहाँ हम साथ-साथ रहते हुए भी एक दूसरे से दूर हैं। (चिन्ता मुद्रा में बैठे हुए राम के चेहरे की ओर क्षण भर के लिए टक लगाए देखती है।) मैं जो कह रही हूँ ठीक है न ?

राम—कैसे कहूँ कि ठीक नहीं है। पर परिस्थिति बदल गई है। उस समय हम केवल राम सीता थे अब मैं अयोध्या का राजा हूँ और तुम उस राजा की रानी हो। अब यह एक व्यक्ति का संसार नहीं है। इस विस्तृत संसार का भार अब अपने ऊपर है। अपने समाधान की अपेक्षा हमें अब लोकाराधना को महत्व देना चाहिये। मेरी प्रजा के समाधान में ही हम दोनों के समाधान का अहंभाव समाप्त होकर अब समष्टि के समाधान का प्रारम्भ हुआ है यह बात तुम कैसे भूल जाती हो ?

सीता—एक राम को छोड़कर मुझे और किसी की भी याद नहीं। राम के जीवन में ही सीता का अहं लुप्त हो गया है। इसीलिए तो सारे लोग सीता राम का जयजयकार कर रहे हैं।

राम—कर रहे हैं न ? सीता के अहं का लोप राम में हो गया है न ? फिर तुम ऐसा क्यों सोचती हो ? राम का कर्तव्य ही तुम्हारा कर्तव्य है, राम का राज्य ही तुम्हारा राज्य राम की प्रजा ही तुम्हारी प्रजा और राम की लोकाराधना ही तुम्हारा जीवन है।

सीता—कितना कठोर सत्य है ! मुझे जँचता है—बुद्धि को जँचता है पर भावना चीत्कार उठती है। वनवास के आनन्द की याद आते

ही लगता है कि फिर से वैसा ही वनवास मिल जाए तो—

राम—कैसी अशुभ बात कह रही हो ! देखा था न तुमने कि अपने वनवास के कारण प्रजा कितनी दुखित हुई थी ? वही दुख उसे फिर से प्राप्त हो यह चाहने की निर्ममता तुम्हारे मन में कैसे उत्पन्न हुई ?

सीता—(सशोक होकर) क्या यह स्वार्थ की भावना है ?

राम—हाँ यह आत्मलिप्सा का लक्षण है ! महान् आत्माओं को यह लक्षण शोभा नहीं देता ।

सीता—मुझे क्षमा कीजिये । निजी आनन्द की कल्पना के कारण बाहरी संसार का दुख क्षण भर के लिए विस्मरण हो गया । अन्तर्दृष्टि से देखते ही मैं अपनी भूल जान गई—(राम के दोनों हाथ पकड़ कर व्याकुल नज़र से उनके मुख की ओर देखते हुए) फिर भी जी चाहता है वह वनवास पुनः मिले !

[कर्णिका अन्दर आकर नमस्कार करके खड़ी हो जाती है ।]

सीता—(राम से दूर होकर) क्या है कर्णिका ?

कर्णिका—सभागृह में राजगुरु प्रभु रामचन्द्रजी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राम—राजगुरु की आज्ञा शिरोधार्य है ! यहीं ठहरो सीता—

सीता—देख लीजिए मुझे घड़ी भर के लिए भी आपका सहवास नहीं मिलता—

राम—अभी आया ।

[जाता है । कर्णिका भी जाती । सीता खिन्न मन से बैठी है । कर्णिका फिर से आकर सीता को नमस्कार करके खड़ी रहती है ।]

कर्णिका—उर्मिला देवी आपसे मिलने आ सकती हैं ?

सीता—वह कहाँ है ?

कर्णिका—बाहर—(दरवाजे के पास जाकर) आइए देवी ।

[उर्मिला अन्दर आती है । कर्णिका जाती है । सीता आगे आती है । दोनों ओर से गले मिलती हैं]

उर्मिला—इतने दिन हो गए पर क्षण भर बैठकर अभी तक हम

मिल भी न सकी। आज तुमको इधर आता देखकर अन्दर आ ही रही थी कि श्रीराम को आते देखकर लौट गई। अच्छा हुआ जो अब वे चले गए। बहिनें बहिनें हम—जेठानी देवरानी का रिश्ता क्यों मानें—

सीता—हम सब बहिनें बहिनें एक घर में रहती हैं पर मिलना भी कठिन हो गया है। चौदह सालों का वियोग—

उर्मिला—फिर भी तुम साथ गयी थी—

सीता—हाँ मैं साथ गई थी। वनवास की आज्ञा उनको हुई थी—उनको अकेले को। लक्ष्मण साथ हो लिये—

उर्मिला—पर मुझको कोई साथ न ले गया।

सीता—क्यों न आई तुम साथ ? तुम आई होती तो एक दूसरे के सहवास में हम दोनों का समय कितने आनन्द से व्यतीत होता !

उर्मिला—मैं साथ नहीं आई ! कैसे आती मैं साथ ? जाते समय तक मुझे पता भी न लगा था। किसे थी मेरी याद ? एक ओर ही ध्यान लगा हुआ था—जहाँ राम वहाँ लक्ष्मण। बेचारी उर्मिला को कौन पूछता है ? न तब पूछा और न आज भी।

सीता—आज भी नहीं ?

उर्मिला—चौदह वर्षों के वियोग के कारण मेरी याद भूल गए हैं। उन्हें ध्यान भी न रहा कि उर्मिला नाम की उनकी एक पत्नी भी है। इस पुनर्मिलन के समय मैं उनके लिए पराई सी हो गई हूँ। क्या स्त्री का हृदय पुरुष ठीक से समझ ही नहीं पाता सीता ?

सीता—तुम्हारा कहना ठीक है। वनवास में उन्होंने एकनिष्ठा से हमारी रक्षा की। उनका लक्ष्य मेरे राम के समाधान पर ही लगा हुआ था। मुझे जानते भी न थे वे। मेरा अस्तित्व उनके ध्यान में भी न था। स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी होती है और वह अर्धांग पुरुष से भिन्न होता है इस बात से वे अवगत ही न थे।

उर्मिला—रावण द्वारा तुम्हारे पकड़े जाने के बाद भी ?—

सीता—यह मैं कैसे कह सकती हूँ ? तब मैं कहाँ थी वहाँ ? रावण

का नाश हुआ विभीषण को राज्य मिला मुझे बुलाया गया—मुझे अग्नि परीक्षा देनी पड़ी यह तो जानती हो न तुम ?

उर्मिला—तुम्हें अग्नि परीक्षा देनी पड़ी ? किसलिए ?

सीता—छः महीने रावण की बंदिनी थी मैं—

उर्मिला—इसलिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ी ? (सीता स्वीकारात्मक गरदन हिलाती है।) इसलिए तुम पर संदेह किया गया ? तुम्हारे निष्कलंक चरित्र के बारे में संदेह करने वाला कौन था वह पापी ?

सीता—(उसके मुँह पर हाथ रखती हुई) ऐसा न कहो उर्मिला बड़ी भाग्यवान् हो जो उस समय तुम उपस्थित न थी। असंख्य वानरों के सामने—किसी समय के शत्रु पर अब मित्र बने हुए राक्षसों के सामने—उन सारी परकीयों के सामने उस समय राम ने जो कहा था वह तुम सुनती तो तुम्हारा हृदय टूक-टूक हो जाता। (क्षण भर चुप रहती है।)—इसलिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ी मुझे।

उर्मिला—रामचन्द्र जी का इतना उदार हृदय उस समय इतना कठोर कैसे हो गया ?

सीता—लोकाराधना के लिए ! क्या वे मेरा मन नहीं जानते थे ? मेरा स्वभाव नहीं जानते थे ? मेरी निष्ठा से क्या वे अपरिचित थे ? फिर भी उन्होंने मुझे अग्नि परीक्षा देने के लिए कहा ! नीति का मोल बड़ा विकट होता है समाज को नीति सिखाने का जिन पर दायित्व होता है उन्हें ऐसा ही कठोर बनना पड़ता है—निष्ठुर रहना पड़ता है।

उर्मिला—किसके ? स्त्री का या पुरुष का ?

सीता—दोनों को ! इसीलिए उन्होंने मुझसे कहा और मैंने अग्नि परीक्षा दी।

उर्मिला—दूसरों के लिए ? अपने लिए नहीं ? सत्य के लिए नहीं ? लोकापवाद के डर से—सत्य से पूर्णतया अपरिचित साधारण जनता के लिए ! सीता मेरी अल्पबुद्धि को यह बात नहीं जँचती। चौदह साल [illegible] मैं यह न्याय माँग रही हूँ। निर्दोष जीवन की अभागी हूँ भाई मैं

मेरा मन बराबर जल रहा था। बराबर एक का ही चिंतन कर रही थी। पर उस एक को मेरी याद भी न थी। आज मैं पारखी बन गई हूँ। अपने उस उपमान से ! जिस लोकाराधना के लिए तुमने इतनी भयंकर परीक्षा दी क्या उन लोगों ने कभी मुझे भी याद किया ? छः महीने तुम रावण की कारा में थीं इसलिए तुम पर संदेह किया गया। चौदह साल से मैं भी इस अयोध्या की कारा में हूँ फिर क्यों किसी ने मुझ पर संदेह नहीं किया ? क्यों नहीं मुझे अग्नि परीक्षा देनी पड़ी ? तुम्हीं को क्यों अग्नि परीक्षा देनी पड़ी ?

[क्षण भर दोनों चुप रहती हैं।]

सीता—रहने दो ये बातें। लोकाराधना का दायित्व जिस पर होता है उसके सिवा और कोई भी इन बातों को नहीं समझ सकता।

उर्मिला—क्या तुम समझती हो ?

सीता—मुझ पर लोकाराधना का दायित्व कहाँ है ?

उर्मिला—तुम इस अयोध्या के साम्राज्य की साम्राज्ञी हो।

सीता—हाँ—मैं रानी हूँ—राजा नहीं।

उर्मिला—हाँ, तुम स्त्री हो—पुरुष नहीं। पौरुष होता है पुरुष के लिए ! चौदह वर्ष जो मैं संन्यासिनी सी रही हूँ वह किस वृत्ति के बल पर ? वह क्या मेरा पौरुष नहीं था ? देह के भेदभाव से वृत्ति का भेद ठहराया जाय ?

सीता—यह तुम्हें कैसे सूझा ?

उर्मिला—चौदह साल मैं कर क्या रही थी ? तुम वनवास में थीं तुम्हें घर न था पास वैभव न था फिर भी तुम पति के साथ थीं। पति के प्रेम का छत्र तुम्हारे मस्तक पर चमक रहा था। मैं घर में थी—वैभव में थी कहूँ तो भी अनुचित न होगा—फिर भी मैं अनाथ थी निराधार थी। उस एकाकी जीवन ने मुझे सोचने के लिए बाध्य किया। उस सोचने से जो मैंने समझा वह यह कि विधाता की सृष्टि का स्त्री स्त्री है और पुरुष पुरुष !

सीता—ऐसी बातें न करो उर्मिला ! बहुत घबरा उठा है मेरा मन। अब पाया हुआ वैभव भी वनवास की याद से दुःसह हो उठा है। मेरे हृदय में सुलगी हुई इस आग को और अधिक प्रज्वलित न करो। तुम बहिनें इतने सालों के वियोग के पश्चात मिली हैं। पर लौटकर भी प्रत्यक्ष मिलने में इतनी देर हो गई। अब तुम मिली हो, कितना आनन्द हुआ है मुझे ! इतने सालों का सूनापन मिट गया सा लगता था क्यों उसकी मुझे याद दिला रही हो ?

उर्मिला—चौदह साल में मैं बूढ़ी हो गई हूँ सीता ! बुढ़ापा छा गया है मुझ पर, यौवन की तो छोड़ो पर बाल्यावस्था की याद भी पूर्णतः मिट गई है। वह मुझे कैसे मिलेगा।

सीता—मेरे कारण ! मेरी भेंट के कारण ! मेरी इस भेंट में ही सारा यौवन—सारी बाल्यावस्था संचित है। मेरी इस भेंट से ही मुरझाया हुआ अंकुर अब दुबारा हरा होगा !

उर्मिला—(विस्मय से हँसकर) इसीलिए तो मैं आपसे मिलने आई !

सीता—आई न ? तो फिर अब कुछ न कहो। पिछली बातें भुला दो। चौदह वर्ष रूपी रात अब बीत चुकी है भविष्य का उदय हो रहा है। उस उदय की ओर देखते हुए मानो हम नये संसार में फिर से जन्म लें। इस पुनर्जन्म का आनन्द मैंने देखा है। अग्नि परीक्षा के कारण मुझे पुनर्जन्म का सौभाग्य प्राप्त हुआ—

उर्मिला—वह सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ—

सीता—नहीं—वे बातें ही न करो अब। हम कुछ और बातें करें।

उर्मिला—कुछ बातें करोगी पहले से भी क्या कभी बातें करना भी स्फूर्ति लाती है ? चौदह । मैं सुलगती हुई दुःख की उस बिमारी को कैसे भुला राम से इसलिए वह बिमारी फिर से ५

[स

होकर दोनों पर सरसरी नजर फेर कर सिर झुका लेता है और किसी की ओर न देखते हुए हाथ जोड़ कर खड़े-खड़े कहते हैं।]

लक्ष्मण—सीतादेवी के लिए रामचन्द्रजी का सन्देशा है—सुग्रीव की आज्ञा से मैं महत्वपूर्ण कार्य में उलझा हुआ हूँ। मेरे लौटने तक सीतादेवी मेरी प्रतीक्षा करें।

सीता—(मुस्कराती हुई) इधर देखिये लक्ष्मण यहाँ कौन खड़ी है ?

लक्ष्मण—यह मैं कैसे बतलाऊँ ? मैं शब्द पहचानता हूँ। सीता देवी बोल रही हैं। दूसरी जब बोल नहीं रही है तो मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह कौन है ?

सीता—यह याद है मुझे। वनवास में मुझे आप शब्द से ही पहचानते थे—

लक्ष्मण—जब सुग्रीव ने आभूषण दिखाए थे तब मैंने पायल पहचाने थे। चरण वंदना के समय मैं उन्हें देखता जो था।

सीता—हाँ मैंने यह सुना था ! (उर्मिला से) बोल न री तेरा शब्द इन्हें एकबार सुन तो लेने दे।

उर्मिला—क्या बोलूँ ? बोलने के लिए मेरे पास अब है ही क्या ?

लक्ष्मण—इस शब्द से मैं परिचित नहीं हूँ।

सीता—(उर्मिला से) अयोध्या को लौटने के पश्चात् क्या तूने इनसे कभी बात नहीं की ?

उर्मिला—कब करती ? रामचन्द्रजी की छाया में अखण्ड रहनेवाले व्यक्ति से मेरी भेंट कब होती ?

सीता—(लक्ष्मण से) यह सच है देवर जी ? अब भी पहले की ही भाँति सारी रात आप हमारे दरवाजे पर खड़े रहते हैं ?

लक्ष्मण—मेरे नित्यक्रम में आजतक कभी अन्तर नहीं पड़ा है।

सीता—अब भी अयोध्या में आने के पश्चात् भी ?

लक्ष्मण—श्री रामचन्द्र जी की एकनिष्ठ सेवा को छोड़कर जी नहीं सकता यह लक्ष्मण।

सीता—ऐसी बातें न करो उर्मिला ! बहुत घबरा रहा है मेरा मन। अब पाया हुआ वैभव भी वनवास की याद न भुला सका है। मेरे हृदय में चुभती हुई इस याद को और अधिक उत्तेजित न करो। तुमने अपने स्वामी के वियोग के पश्चात् मिला है। चार चौदह वर्ष प्रथम मिलन में इतनी बड़ी हो गई। अब तुम निश्चिन्त हो। कितना आनन्द हुआ है मन ! प्यार सासों का दीपक मिट गया था जलता था, क्यों उसकी मन ने याद किया नहीं था ?

उर्मिला—चौदह साल में मैं बूढ़ी हो गई हूँ सीता ! बुढ़ापा छा गया है मुझ पर, यौवन की ना छाया पर बाल्यावस्था के बाद भी यौवन मिट गई है। वह मन कैसे मिलेगा।

सीता—यह कारण ! यही तो है कारण ! अभी इस भेंट में ही मानो यौवन—आई बाल्यावस्था अंकित है। यही इस भेंट में हो मुरझाया हुआ अंकुर अब पुलकित हरा होगा !

उर्मिला—(विस्मिता से हँसकर) हर्षित नाथ से मानती कुसुम खिलना आई !

सीता—आई न ? तो फिर अब कुछ न कहो। पिछली बातें भुला दो। चौदह वर्ष भरी रात अब बीत चुकी है भविष्य का उदय हो रहा है। उस उदय की ओर देखते हुए आओ हम नये संसार में फिर से जगें। इस पुनर्मिलन का आनन्द मैंने देखा है। इस कठिन परीक्षा के कारण मुझे पुनर्जन्म का सौभाग्य प्राप्त हुआ—

उर्मिला—वह सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ—

सीता—नहीं—ये बातें हो न करो अब। हम कुछ और बातें करें।

उर्मिला—कुछ बातें करेंगे बहन ! न भी क्या कभी बातें करने की स्फूर्ति आती है ? चौदह साल न पत्नीत्व में तपस्या हुई हूँ भी उस विरहाग्नि को कैसे भूल जाऊँ ? अभी तुम से भेंट हुई है प्रफुल्लित यह चित्त अभी फिर न चैन रही है—

[लक्ष्मण प्रवेश करते हैं। कुछ देर के लिए निस्तब्ध-विमूढ़

होकर दोनों पर सरसरी नजर फेर कर सिर झुका लेते हैं और किसी की ओर न देखते हुए हाथ जोड़ कर खड़े-खड़े कहते हैं।]

लक्ष्मण—सीतादेवी के लिए रामचन्द्रजी का सन्देश है—'गुरुदेव की आज्ञा से मैं महत्वपूर्ण कार्य में उलझा हुआ हूँ। मेरे लौटने तक सीतादेवी मेरी प्रतीक्षा करें।

सीता—(मुस्कराती हुई) इधर देखिये लक्ष्मण यहाँ कौन खड़ी है ?

लक्ष्मण—यह मैं कैसे बतलाऊँ ? मैं शब्द पहचानता हूँ। सीता देवी बोल रही हैं। दूसरी अब बोल नहीं रही है तो मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह कौन है ?

सीता—यह याद है मुझे। वनवास में मुझे आप शब्द से ही पहचानते थे—

लक्ष्मण—जब सुग्रीव ने आभूषण दिखाए थे तब मैंने पायल पहचाने थे। चरण वंदना के समय मैं उन्हें वंदता जो था।

सीता—हाँ मैंने यह सुना था। (उर्मिला से) बोल न री तेरा शब्द इन्हें एकबार सुन तो लेने दे।

उर्मिला—क्या बोलूँ ? बोलने के लिए मेरे पास अब है ही क्या ?

लक्ष्मण—इस शब्द से मैं परिचित नहीं हूँ।

सीता—(उर्मिला से) अयोध्या का लौटने के पश्चात् क्या तूने इनसे कभी बात नहीं की ?

उर्मिला—कब करती ? रामचन्द्रजी की छाया में अखण्ड रहनेवाले व्यक्ति से मेरी भेंट कब होती ?

सीता—(लक्ष्मण से) यह सच है देवर जी ? अब भी पहले की ही भाँति सारी रात आप हमारे दरवाजे पर खड़े रहते हैं ?

लक्ष्मण—मेरे नियमक्रम में आजतक कभी अन्तर नहीं पड़ा है।

सीता—अब भी अयोध्या में आने के पश्चात् भी ?

लक्ष्मण—जी रामचन्द्र जी की एकनिष्ठ सेवा का आदर्श भी नहीं छुटता यह लक्ष्मण।

सीता—एकनिष्ठ सेवा के कारण आपका सब समय बीतने लगे तो आपकी यह पत्नी क्या करे ? पति के नाते भी आपका कुछ कर्तव्य है क्या यह किसी ने भी नहीं बतलाया आपको ?

लक्ष्मण—राम की सेवा के अतिरिक्त मैं और कोई भी कर्तव्य नहीं जानता।

सीता—वनवास में उस सेवा की आवश्यकता थी। हम दोनों की रक्षा का भार आपने स्वेच्छा से स्वीकारा था। वह वनवास अब समाप्त हो गया रामराज्य हुआ अयोध्या की प्रचंड सेना हमारी रक्षा के लिए दिन रात प्रस्तुत है, फिर भी हमारे द्वार पर अब आप कड़ा पहरा क्योंकर देते हैं ? क्या रामचन्द्रजी यह नहीं जानते ? क्या उन्होंने आपको मना नहीं किया ?

लक्ष्मण—वे कैसे जानते ? और जानते ही नहीं तो मना कैसे करते ?

सीता—हम दोनों एक हैं न ? मैं कहती हूँ मेरी आज्ञा है आज से यह कड़ा पहरा समाप्त कीजिए—और अपना भी कोई घर है यह बात एक बार उर्मिला को जान लेने दीजिए (लक्ष्मण परेशान हो जाता है।) यह क्या देवर जी मेरे कहने पर भी आपको बात नहीं जँचती ?

लक्ष्मण—इतने सालों का अभ्यास अकस्मात कैसे छूट सकता है ?

सीता—चौ दहों से भी अधिक वर्ष हो गए। हमारे विवाह हुए थे। हम सब समवयस्क ही तो थे। उसका भी आपको स्मरण है या नहीं ?

लक्ष्मण—जी धुंधला सा स्मरण है। चौदह वर्षों से भी अधिक काल व्यतीत होने के कारण वह स्मृति होते हुए भी न होने के समान हो गई है।

सीता—(उर्मिला को सीने से चिपटाकर) इधर देखिये देवर जी हम बहिनें हैं। रामचन्द्रजी के सहवास में मैं स्वर्ग के आनन्द का अनुभव कर रही हूँ और मेरी इस बहन को अपने पति का परिचय भी न प्राप्त हो ? यह देखकर क्या मुझे दुख न होगा ? (लक्ष्मण चुप रहते हैं।) हमारे सुख को ही अपना आनन्द समझकर आपने आजतक हमारी रक्षा की पर क्या मेरे इस दुख का भार निवारण नहीं करेंगे ? इधर देखिए,

इस उर्मिला की ओर देखिए। अपनी इस पत्नी की ओर देखिये कैसी मुरझा गई है। क्यों इस प्रकार उपेक्षा करते हैं?

लक्ष्मण—(एकबार उर्मिला की ओर देखकर फिर दृष्टि फेरते हुए) मैं सब कुछ भूल गया हूँ। एक राम के अतिरिक्त मुझे इस संसार में और कुछ भी दिखाई नहीं देता।

उर्मिला—सुन लिया? हो गया विश्वास? क्यों भावुक अपना अमूल्य समय गँवाती हो?

सीता—(लक्ष्मण से) आपने देखा था न कि रामचन्द्रजी के सहवास में मैं कितनी आनन्दित थी—उनके सहवास में मेरे लिये वनवास भी कितना सुखकर हो गया था?

लक्ष्मण—मैं पर्णकुटी के बाहर रहता था।

सीता—हम एक दूसरे के साथ रहते थे क्षण भर के लिए भी एक दूसरे को नहीं छोड़ते थे इतना तो देखा ही था न आपने?

लक्ष्मण—जी।

सीता—तो फिर वैसे ही आप दोनों भी रहिए।

लक्ष्मण—(परेशान होकर) उधर रामचन्द्रजी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। कितना समय बिता दिया मैंने यहाँ!

[एकदम चले जाते हैं। उर्मिला सीता के गले से लिपट कर रोने लगती है।]

सीता—(उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए) चुप हो जाओ। चुप हो जाओ।

उर्मिला—मैं रोऊँ भी नहीं? आज इतने सालों से अखण्ड वियोग का दुःख हृदय में संचित कर रक्खा था उसे पसीजने भी न दूँ? क्या करूँ सीता क्या करूँ? जिस प्रकार दिन रात ये द्वार पर पहरा देते हैं उसी तरह इनके साथ मैं भी तुम्हारे द्वार पर पहरा दिया करूँ। क्या यह बात का इतना सुख भी मुझे मिलेगा?

सीता—निष्ठा का अतिरेक है घुट निर्ममता! इस भक्ति पर संसार

गौरव करेगा। इसके गीत गायेगा पर उस अलौकिक भक्ति के कारण वन वन रोते हुए व्यक्ति की संसार को क्या कभी याद भी रहेगी ?

उर्मिला—वनवास में भी आप सुखी थे अब तो यह आप ही का राज्य है। सुख की चरमसीमा है—

सीता—क्या सचमुच यह सुख की चरमसीमा है ? उर्मिला वनवास का वह सुख जब याद आता है तब उसकी इस सुख से तुलना नहीं हो पाती। प्रतिदिन का वह निकट सहवास अब फिर से दुर्लभ होने लगा है मुझे। ठीक तुम्हारी ही तरह नहीं फिर भी लगभग तुम्हारी सी ही विरहावस्था में मेरा प्राण अकुला रहा है। रावण की कारा में बिताया हुआ छः माह का समय—उस कुटी के निर्मल वक्ष पर पड़ा हुआ वह छोटा सा बाग—वह उतना ही सुख का काल—

[विजय और वासंती प्रवेश करते हैं और दोनों सीता के चरणों पर मस्तक रखते हैं।]

विजय वासंती—क्षमा करो माते क्षमा करो।

सीता—उठो वासंती उठो विजय क्या हुआ ?

वासंती—बड़ा घोर अपराध हुआ है हमारे हाथों।

विजय—प्रभु से प्रतारणा करने का पाप हमने जानबूझकर किया है।

सीता—कैसी प्रतारणा ?

विजय—(आसन की ओर उँगली से संकेत करते हुए) यह आसन—

सीता—उसे क्या हुआ कितना सुन्दर है यह।

वासंती—यह मृगचर्म—

सीता—कितना सुन्दर है यह भी इस मनोहर संसार की शून्यता में इस मृगचर्म के स्पर्श से मुझे कितना आनन्द हुआ ! पुरानी कितनी स्मृतियाँ जाग पड़ीं ! तुम्हें यह कैसे सूझा वासंती ?

वासंती—यह मेरी मूर्खता थी।

विजय—यह पाप छिपाने के लिए—

सीता—(चौंककर) काहे का पाप ?

विजय—उस आसन का नाम ?

वासंती—कितना प्रयत्न किया मैंने ! फिर भी वह नाम न मिलता। इस मदचर्म की पहली याद मुझे थी अवश्य पर उसके कारण यह मृगचर्म मैंने नहीं रक्खा था। उसकी याद इस नाम के कारण आई—यह नाम ढकने के लिए।

सीता—यह बात हमारे ध्यान में नहीं आई। बल्कि हमें तुम्हारी स्मरणशक्ति पर कुतूहल ही हुआ। तुम दोनों ने अभी आकर न बतलाया होता तो मुझे पता भी न चलता—क्या इसी बात की तुम दोनों क्षमा माँग रहे हो ?

विजय—हाँ माता यह ठीक है कि आपको पता न चलता पर यह जानबूझकर किया हुआ अपराध था। यदि हम न बतलाते तो पाप करते। अब यह रामराज्य है—

सीता—क्या कहा ?

वासंती—अब यह रामराज्य है। इस रामराज्य में जानबूझकर या अनजाने कोई पाप कर्म न करे यह घोषणा राज्याभिषेक के समय प्रभु ने की थी न ? किये हुए कर्म का जो मुझे पश्चात्ताप हुआ है वह उस घोषणा की याद आने के कारण ही।

सीता—सुनो उर्मिला रामराज्य प्रारम्भ होने का यह प्रत्यक्ष प्रमाण देख लो।

वासंती—(फिर सीता के पैर पकड़ कर) क्षमा करो माते—क्षमा करो।

सीता—(हँसकर) जाओ तुम्हें क्षमा कर दिया।

विजय—प्रभु से भी क्षमा माँगनी चाहिये ?

सीता—कोई आवश्यकता नहीं। तुम जाओ अब—

वासंती—मेरी अपनी ओर भी एक याचना है। चौदह वर्ष मैं आपकी प्रतीक्षा में यहीं थी। एक बार भी मायके नहीं गई। अब रामराज्य हो गया है, रामराज्य में का मायका मैं एक बार देख आऊँ ?

उर्मिला—आजन्म कारावास !

सीता—लोकाराधना का कारावास ! हमेशा राज्य कार्य ! ऋषि मुनियों की सेवा ! बूढ़ों का हवन ! —उर्मिला तुमने कहा था मैं रानी हूँ। राजा को कुछ-न-कुछ काम होता है मुझे क्या काम है ? छः महीने के वियोग में मैं मृतप्राय हो गई थी अब इस अखण्ड सहवास का अखण्ड वियोग मैं कैसे सहन करूँ ?

उर्मिला—अखण्ड सहवास का अखण्ड वियोग ! वियोग ! अब नहीं होगा। अब रामराज्य आरम्भ हुआ है। अब रामचन्द्रजी को अवकाश न मिलेगा। और जहाँ राम वहाँ लक्ष्मण—लक्ष्मण को भी अवकाश न मिलेगा। अब तुम और मैं—दोनों ही अकेली !

सीता—दोनों ही अकेली ! सच है क्या यह यों ही चलता रहेगा उर्मिला ?

उर्मिला—भवितव्यता के उदय में कैसा प्रकाश होगा यह हमें कौन बता सकता है ?

सीता—तुमने जो कहा वही ठीक है। स्त्री स्त्री है और पुरुष पुरुष फिर चाहे वह रानी हो या साधारण गृहिणी !—साधारण गृहिणी का जीवन क्या ऐसा ही होता है उर्मिला ?

उर्मिला—कौन कह सकता है ? मैं भी कहाँ जानती हूँ ? राज घराने में उत्पन्न होने का दुर्भाग्य जो हमें प्राप्त हुआ है ! हम साधारण लोगों का जीवन कैसे जान सकती हैं ?

सीता—लगता था इतने दिनों के बाद आज यहीं घर सजधज से बैठने को मिलेगा। कितनी प्रसन्न थी मैं ! वनवास की मीठी-मीठी बातें कर रही थी। और भी कितनी ही बातें मैं करने वाली थी पर यह लोकाराधना मेरे सुख में आड़ी आई। क्या होने वाला है उर्मिला आगे क्या होने वाला है ?

[भावावेश में वह उर्मिला को कसकर सीने से चिपटा लेती है।]

(पर्दा)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[सीता का अन्तःपुर। कुब्जिका जल्दी-जल्दी अन्दर आती है। उसके पीछे-पीछे उसे पुकारता हुआ विजय आता है।]

विजय—कह रहा हूँ न ठहरो कुब्जिका।

कुब्जिका—आप खाली होंगे पर मुझे इस समय फुरसत नहीं। आज प्रभु यहाँ आनेवाले हैं इसलिए मुझे यहाँ की सारी व्यवस्था करना है।

विजय—अच्छा अच्छा चलने दो अपना काम तुम काम करती रहो और इसी बीच मुझे जो कहना है मैं कहे देता हूँ।

[पीठिकाएँ इत्यादि ठीक करते-करते दोनों बातें कर रहे हैं। कुब्जिका काम कर रही है और विजय उसके साथ टहलता हुआ बातें कर रहा है।]

विजय—मुझे अपने प्रश्न का आज ही उत्तर चाहिए। नहीं सुना? आज वासंती मायके से आ रही है इसके पहले मुझे तुम्हारा उत्तर चाहिए।

कुब्जिका—सौत के साथ मुझे घर नहीं बसाना है।

विजय—क्यों नहीं? राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं उनका घर बसा था नहीं?

कुब्जिका—घर क्या बसा? दो अच्छी थीं पर तीसरी ने पति की जान ले ली या नहीं?

1 विजय—लेकिन तुम वैसी नहीं हो।

कृत्तिका—और उसे शुबहा हुई तो ?

विजय—पर मैं जो पक्का हूँ, मैं किसी से डरूँ या नहीं और वैसे देखा जाय तो मैंने मालती को वर तो लिए नहीं है। उससे मेरी एकदम तबियत भर गई है। एक महीने के लिए कहकर गई पर आज तीन महीने हो गए। मायके जाने के लिए कह गई थी पर पूछताछ की तो पता चला कि वह किसी दूसरे ही गाँव गई थी। इसीलिए तुम्हें उसकी गद्दी पर बैठाना चाहता हूँ।

कृत्तिका—बिचारी चौदह साल से यहाँ बन्दिनी सी रह रही थी। गई होगी कहीं और बाहर जाकर आदमी चाहता ही है कि चार जगह घूम आए। आज आ रही है न वह ?

विजय—कृत्तिका—(उसके कंधे पर हाथ रखता है। वह उसका हाथ झिड़क देती है।) ऐसा क्यों करती हो ? उसके जाने के बाद इतने दिन हम लोगों ने बड़े मजे से व्यतीत किए और अब वह आ रही है कहते ही मुझे झिड़क रही हो ?

कृत्तिका—इसीलिए झिड़क रही हूँ। जो हुआ वह बहुत हुआ। अब आकर यदि उसने देख लिया तो वह मेरा गला दबा देगी।

विजय—तभी तो कहता हूँ कि हम लोग ब्याह कर लें। एक बार ब्याह होने पर उसकी क्या मजाल कि तुम पर हाथ उठाए ?

कृत्तिका—आपकी आयु कितनी और मेरी कितनी चार आदमियों को क्या अच्छा लगेगा ?

विजय—तुमने राजा दशरथ को नहीं देखा। रानी कैकेयी और उनकी आयु में ऐसा ही अन्तर था। देख ही रही हो कि कौसल्या देवी से कैकेयी देवी कितनी छोटी लगती है।

कृत्तिका—मुझे जरा विचार करना होगा। अभी जो आपने राज माताओं का उल्लेख किया उससे मुझे सारा पुराना इतिहास याद आ गया। आगा-पीछा भी सोच लेना चाहिए या नहीं ?

विजय—गए तीन महीने में हमारा कुछ बिगड़ा ? —नहीं बिगड़ा

न ? तो अब क्यों विचार किया जाय ?

कलिका—ब्याह करना है न इसलिए। (घूमती हुई सी) शायद सीता देवी आ गई। अब जाओ तो यहाँ से।

विजय—पर मेरे प्रश्न का उत्तर ?

कलिका—वासंती के आने पर आप कैसे रहते है यह मुझे अब देखना है। यदि मेरी इच्छानुसार सब कुछ होता दिखाई दिया तो—

विजय—तो हो जाओगी न ब्याह के लिए तैयार ?

कलिका—तब का तब देखा जायगा। पहले यहाँ से शीघ्र चले जाओ। यहाँ तुम्हारा काम नहीं। सीता देवी ने तुमको यहाँ देख लिया तो—कह रही हूँ न जाओ! सब तुम्हारी इच्छानुसार हो जायगा।

विजय—होगा न ? तब जाता हूँ। (जाते हुए उसके गाल पर हल्की सी चपत लगाकर चला जाता है।)

कलिका—ये हैं बूढ़े लोग !

[वासंती और सम्बूक प्रवेश करते है। सम्बूक बीस साल का नवयुवक है—गठीले शरीर का नवयुवक। उसका रंग काला है फिर भी वह खूबसूरत और हँसमुख है। अन्दर आते ही वह क्षण भर किंकर्तव्य-विमूढ़ सा इधर उधर देखने लगता है और बाद में चुपचाप खड़ा रहता है। कलिका की नज़र वासंती की ओर जाती है।]

कलिका—आ गई ? कहाँ थी इतने दिन ? वह तुम्हारा पति तुम्हारे लिए जान दे रहा है।

वासंती—सीता देवी आने वाली है न अब ?

कलिका—हाँ! पर पहले यह बतलाओ कि तुम गई कहाँ थी और यह तुम्हारे साथ कौन है ?

वासंती—यह मेरा मामा हुआ भाई है। मैं इसी के गाँव गई थी।

कलिका—मामा हुआ भाई ? हूँ! यहाँ क्यों लाई हो इसे ? यह

अपनी बात का नहीं दिखाई देता ।

वासंती—सीतादेवी से मिलने आया है यह ।

कृत्तिका—तुम्हारे वसीले से ?

वासंती—कैसा वसीला ? बिचारे के साथ दूसरे लोगों ने अन्याय किया इसलिए न्याय मांगने आया है।

कृत्तिका—कैसा अन्याय किया ?

वासंती—यह एक वस्तु है—शूद्र है । सारे ऋषि मुनी उस पर क्रुद्ध हैं—

कृत्तिका—तुम्हें अच्छी उस पर दया आई ! यह ठीक नहीं वासंती । राजसेवा करने के पाए हुए अधिकार का ऐसा दुरुपयोग करना ठीक नहीं ।

शम्बूक—(अचानक आगे आकर वासंती से) मैं जाऊं ?

वासंती—क्यों ? यह कहती है इसलिए ? यह क्या जानती है ?

कृत्तिका—मैं कुछ नहीं जानती फिर भी इतना जानती हूँ कि दास दासियों को ऐसे झंझटों में न पड़ना चाहिए । उन्हें कोई शिकायत हो तो सीधा राज दर्बार में जाना चाहिए —

[सीता आती है । अंदर आते समय वह क्षण भर ठहरकर शम्बूक की ओर देखती है तत्पश्चात् वासंती की ओर मुड़ती है ।]

सीता—आ गई वासंती ? मुझे बराबर याद आ रही थी तुम्हारी । यह कृत्तिका यहां थी अवश्य फिर भी आखिर यह सखी ही है—

[वासंती शम्बूक को इशारा करती है । शम्बूक नमस्कार करता है । सीता शम्बूक की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखती है ।]

वासंती—यह मेरा मामा हुआ भाई है । तो भी यह आर्य नहीं शूद्र है । शम्बूक अब तुम्हीं कहो जो तुम्हें कहना है ।

शम्बूक—मुझे क्षमा कीजिए देवी । राज दरबार के शिष्टाचार से मैं अवगत नहीं । यदि मुझसे कुछ भूल हो जाय तो उस पर ध्यान न

दीजिए। (सीता आसन पर बैठ जाती है।) मैं एक शम्बूक हूँ। शूद्र हूँ। किसी भी वंश में जन्म लेना किसी के बस की बात नहीं होती। अनार्य घराने में पैदा होने के कारण मुझे सताया जा रहा है—

सीता—कौन तुम्हें सता रहा है ?

शम्बूक—सारा ब्राह्मण वर्ग सारे ऋषि-मुनि ! बचपन से मैं एक ऋषि की पर्णकुटी में पला हूँ। वे ऋषि विश्वामित्र ऋषि के अनुगामी थे। अनार्य होने के कारण उन्होंने मेरा तिरस्कार नहीं किया। मुझे सिखाया पढ़ाया मुझसे वेदाध्ययन करवाया उन्होंने मुझे तपश्चर्या का मार्ग दिखाया। व स्वर्गवासी हो गये पर उनकी आज्ञा का पालन करते हुए मैंने अपना व्रत चालू रक्खा था। वे अब जीवित नहीं यह देखकर सारे ब्राह्मण वर्ग ने मुझे सताना प्रारम्भ कर दिया है—

सीता—पर वे तुम्हें क्यों सताते हैं ?

शम्बूक—यही तो मैं भी नहीं जानता। देवी मैं एक भूमिपुत्र हूँ। भूमि माता की सेवा करते-करते मेरे माता-पिता ने शरीर त्याग दिये अभी भूमि माता की सेवा मैं अब कर रहा हूँ। इस सेवा के साथ-साथ शूद्र का विज्ञान हुआ तप का मार्ग भी मैं अपनाए हुए हूँ। यहाँ के तपस्वी लोगों का कहना है कि मुझे यह अधिकार नहीं है। उन्होंने रामचन्द्र जी से निवेदन किया है कि मेरा यह अपराध दण्डनीय है—

सीता—जनस्थान के दस्युओं के उत्पात के कारण प्रभु गए थे—

शम्बूक—जी यह अकेला दस्यु मैं ही हूँ—और यही मेरा उत्पात है, इस उत्पात को मिटाने के लिए तपस्वियों ने नाहक प्रभु को कष्ट दिया।

सीता—फिर प्रभु ने क्या किया ?

शम्बूक—मुझे मना किया। तपश्चर्या का मुझे अधिकार नहीं है यह निर्णय करके गुरुदेव के बताए हुए मार्ग से मुझे पराङ्मुख किया। इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ।

सीता—मैं क्या कर सकती हूँ ? मेरे पास ऐसा कौनसा अधिकार है?

शम्बूक—प्रभु को समझाना—

सीता—क्या प्रभु नहीं समझते ? उन्हें मैं क्या समझा सकती हूँ ? और वह भी किस आधार पर ?

शम्बूक—एक ही आधार पर। मुझे तपश्चर्या का अधिकार नहीं यह किसने ठहराया ? क्यों ठहराया ? क्या इसलिए कि मैं अनार्य हूँ। हम यहाँ के आदिवासी हैं आर्यों ने हम पर आक्रमण किया। हमारे अज्ञान से लाभ उठाकर आगे आर्यों ने हमें अपना दास बना लिया। इस दासता से बन्धुओं को मुक्त करने के लिए ही मैंने तपश्चर्या का मार्ग अपनाया। प्रत्येक मानव को इसका अधिकार है। इसी तपस्या के बल पर विश्वामित्र मुनि ने ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त किया था ? फिर यह अधिकार मुझे भी क्यों न मिले ?

सीता—(स्वगत) विश्वामित्र ब्रह्मर्षि हो गए— विश्वामित्र मुनि के आशीर्वाद से ही प्रभु ने रावण पर विजय पाई—विश्वामित्र मुनि के आशीर्वाद से ही मैं प्रभु की अर्धांगिनी बनी। (शम्बूक से) तुमने विश्वामित्र मुनि का नाम लिया ? यह प्रभु को क्यों न बताया ?

शम्बूक—मुझे किसी ने बोलने ही न दिया। इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ। मुझे क्षमा कीजिए। यह न समझिए कि मैं व्यर्थ में तूल जोड़ रहा हूँ। और लोगों को मुझसे सहानुभूति नहीं होगी पर आप मुझ पर दया करेंगी इस विश्वास के कारण ही मैं अपनी इस बहन के कहने पर यहाँ आया हूँ।

सीता—तुमने यह कैसे समझा कि मुझे तुमसे सहानुभूति होगी ?

शम्बूक—भूमि पुत्र से भूमि कन्या को सहानुभूति न होगी तो और होगी किसे। उसी मिट्टी में आपका जन्म हुआ है हल के फल की नोंक पर जन्म हुआ है, विदेह के राजा जनक ने भूत के हाथ से हल लिया। यज्ञकर्म के लिए राजा जनक ने भूत वृत्ति स्वीकार की इसीलिए सीता पैदा हुई—

सीता—मैं भूमि कन्या हूँ ?

शम्बूक—हाँ अयोनिसंभवा ! स्वयं भूमिमाता ने जनी हुई ! इस भूमिकन्या को भूमाता के सेवक पर दया न आएगी तो और आएगी किसे ?

सीता—मैं भूमिकन्या ! तुम भूमिपुत्र ! भूमाता के सेवक !—शम्बूक डरो मत । तुम्हारी यह बहन तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेगी । तुम सब लोग जाओ । बिल्कुल निश्चिन्त रहो शम्बूक । शाबाश ! वासंती !—जाओ सब—मुझे क्षण भर अकेली रहने दो !

[वासंती कुटिका और शम्बूक जाते हैं । सीता परेशानी से टहलने लगती है। तभी राम आते हैं । क्षण भर उसका ध्यान राम की ओर नहीं जाता ।

राम—सीता सीता कुछ देर तक यों ही उनके मुख की ओर देखती रहती है ।) क्या हुआ ? क्यों ऐसी अस्वस्थ हो गई हो ?

सीता—यह रामराज्य है—

राम—इसीलिए तुम अस्वस्थ हो रही हो ?

सीता—राम राज्य की स्थापना न्याय के आधार पर हुई है—सत्य के आधार पर हुई है—क्यों ?

राम—इसमें तुम्हें संदेह क्यों हुआ ? इस रामराज्य में अपनी प्रजा के एक भी व्यक्ति के साथ अन्याय न होना चाहिए।

सीता—मानते हैं न ?

राम—किसके साथ अन्याय हुआ है ?

सीता—विश्वामित्र मुनी कौन थे ?

राम—मेरे गुरु, मेरे बुद्धिदाता, मेरे शक्तिदाता !

सीता—उनका जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ था न ? (राम सकारात्मक सिर हिलाते हैं ।) वे ब्रह्मर्षि बन गए—

राम—उसके लिए उन्होंने कितनी कठोर तपस्या की !

सीता—उनकी उस तपस्या का विरोध हुआ था। विरोध हुआ था

पर उस पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया था। बड़े धैर्य से उन्होंने विरोधियों का सामना किया और इसीलिए वे ब्रह्मर्षि बने। रघुवंश के गुरु वशिष्ठ महामुनि ने ही तो आखिर उन्हें ब्रह्मर्षि कहा था ?

राम—हाँ !—पर आज ही तुम्हें उस प्रसंग की क्यों याद आई ?

सीता—इसलिए कि ऐसे ही एक तपोनिष्ठ व्यक्ति का विरोध हो रहा है—इसलिए कि इस रामराज्य में उस पर प्रतिबंध लगाया जा रहा है !

राम—किस पर !

सीता—शम्बूक नामक एक शूद्र पर—भूमिपुत्र पर—मेरे भाई पर।

राम—तुम्हारा भाई ? कौन है यह तुम्हारा भाई ?

सीता—मैं भूमिकन्या हूँ ! मैं भूल गई थी। उसने मुझे याद दिला दी। हल के फल पर जन्म हुआ था मेरा ! इसी मिट्टी में से मैं उत्पन्न हुई हूँ ! मिट्टी की कन्या हूँ मैं ! इस मिट्टी की सेवा करने वाला हाथ में हल पकड़े हमारे अन्न के लिए शरीर-बाहु की तपस्या करने वाला प्रत्येक मानव मेरा भाई है। भूमिमाता के ऐसे उस पुत्र को तपस्या का अधिकार नहीं यह किसने तय किया ?

राम—ऋषि मुनियों ने ! ब्राह्मण वर्ग ने ! ब्राह्मण वर्ग का आज्ञा धारक सेवक है यह राम !

सीता—विश्वामित्र के शिष्य हैं राम ! भूमिकन्या के पति हैं यह राम !

राम—यह क्या हो गया है तुम आज ?

सीता—सिंहासन के सम्पर्क के कारण मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। मेरे उस भाई ने शम्बूक ने मुझे मेरी जन्म कहानी की याद दिला दी। उसके साथ अन्याय नहीं होना चाहिए।

राम—क्या यह तुम्हारी आज्ञा है ?

सीता—यह मेरी याचना है ! आज्ञा देने का मुझे अधिकार नहीं।

राम—बड़ा कठिन प्रसंग है यह बात मेरे अधिकार से बाहर है।

सीता—यह राम राज्य है। इस राम राज्य में राम के अतिरिक्त और किसका अधिकार चलता है ?

राम—धर्म का पालन करना राजा का कर्तव्य है। धर्म पर अधिकार ब्राह्मण वर्ग को है।

सीता—राम राज्य में भी ?

राम—ब्राह्मण वर्ग की आज्ञाओं का पालन करना ही राम राज्य है।

सीता—ब्राह्मण वर्ग की आज्ञाएँ अन्याय को लिये हों तब भी ?

राम—ब्राह्मण वर्ग अन्याय करेगा ही नहीं।

सीता—तो विश्वामित्र को क्यों सताया गया था ?

राम—ब्राह्मण वर्ग ने उनकी परीक्षा ली थी।

सीता—फिर शम्बूक की भी परीक्षा ले लेने दीजिए उन्हें।

राम—मैं विवश हूँ सीता देवी। शम्बूक का अधर्माचरण सबके नाश का कारण होगा। विश्वामित्र के साथ उसकी तुलना न करो। वह दस्यु है। अनार्य है शूद्र है—

सीता—भूमिपुत्र है ! मेरा भाई है !—(राम चुप रहते हैं।) अब क्यों नहीं बोलते ?

राम—यह लोकाराधना बड़ी कठिन वस्तु है !

सीता—आपकी लोकाराधना की व्याख्या में कौन से लोगों का समावेश है ?

राम—सबका।

सीता—तो क्या शम्बूक उनसे परे है ? किन लोगों की आराधना के लिए आप शम्बूक की तपस्या भंग करना चाहते हैं ?

[राजगुरु प्रवेश करते हैं।]

राजगुरु—राजन् !

। [राम और सीता उनके चरणों पर मस्तक रख कर प्रणाम करते हैं।]

राम—महाराज की क्या आज्ञा है ?

राजपुरुष—राजाराम, पंचपुर में आने का प्रतिबन्ध, करना योग्य नहीं था फिर भी मैं चला आया। मैं विवश था। बतलाओ, इस पवित्र प्रासाद में यह अधर्मी कैसे आया ?

राम—यह कौन ?

राजपुरुष—यह वस्तु। जिसके वध के लिए महर्षियों ने राम का आह्वान किया था वह वस्तु! जिसके यहाँ आने से यह स्थान भ्रष्ट हो गया है। अभी तक उसका शिरच्छेद क्यों नहीं हुआ ?

राम—शिरच्छेद ?

राजपुरुष—हाँ! शिरच्छेद! इस अधर्माचरण के लिए शिरच्छेद के अतिरिक्त दूसरा दण्ड नहीं! यह अधर्माचरण ऐसा है, [illegible] रहा तो इस राम राज्य पर अनर्थ हुए बिना न रहेगा।

राम—यदि यह अधर्माचरण पर [illegible] है तो ?

राजपुरुष—किए हुए अपराध का दण्ड मिलना ही चाहिए।

सीता—(उसके पैर पकड़ कर) दया कीजिए गुरुदेव, दया कीजिए। यह मेरा भाई है।

राजपुरुष—तुम्हारा भाई ?

सीता—जी—मेरा भाई! यह भूमिपुत्र है, मैं भूमिकन्या हूँ। यह हलधर है, मैं हल जन्मा हूँ। मेरे लिए इस पर दया कीजिए।

राजपुरुष—यह वस्तु है, पतन है !

सीता—और मैं कौन हूँ ?

राजपुरुष—तुम राज कन्या हो।

सीता—मैं भूमि कन्या हूँ। जिस प्रकार मेरा जन्म राजघराने में नहीं हुआ है वैसे ही ब्राह्मणकुल में भी नहीं हुआ है। जिस प्रकार मैं पतित नहीं हूँ उसी प्रकार अन्य भी नहीं हैं। इतना ही नहीं इस भूमि से मेरा जन्म होने के कारण मैं पापों को धरोहर समझ [illegible] से अधिक निकट हूँ।

राम—ओ सीता एक बार बतलाओ, शम्बूक को पढ़ लिया

जाय तो यह शूद्रकर्म छोड़ने के लिए प्रस्तुत है ?

राजगुरु—नहीं नहीं। अधर्माचरण का अपराध उससे हुआ है। उसे दण्ड मिलना ही चाहिए।

राम—गुरुदेव के चरणों में एक प्रार्थना है। राम राज्य में किसी के साथ अन्याय न होना चाहिए। शम्बूक तपस्या छोड़ दे तो उसे जीवन दान दे दिया जाय निर्वासित कर दिया जाय गुरुदेव मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें।

राजगुरु—और गंगापार जाकर वह तपस्या करने लगे तो ?

राम—तो उसका शिरच्छेद किया जायगा।

राजगुरु—ठीक है। उस वस्तु के स्पर्श से भ्रष्ट हुए इस प्रासाद को शुद्धिकृत करने की मैं आज्ञा दे रहा हूँ। राजा राम तुम्हारा कल्याण हो।

[जाता है। राम और सीता क्षण भर चुपचाप रहते हैं। सीता धीरे-धीरे आसन पर बैठ जाती है। राम उसके पास आते हैं और उसके कंधे पर अपना हाथ रखते हैं।]

राम—हो गया तुम्हारा समाधान ?

सीता—नहीं। शम्बूक बच गया पर न्याय का शिरच्छेद हो गया।

राम—अब किन शब्दों से तुम्हारा समाधान करूं ?

सीता—आप ही ने तो मुझे बताया था न कि विश्वामित्र मुनी के प्रसाद से अनार्यों में जागृति हुई है ? उन जागृत अनार्यों के साथ क्या यही व्यवहार होगा इस राम राज्य में ? शम्बूक बच गया इस बात का मुझे समाधान है पर उसके उद्देश्य की हत्या हो रही है यह मुझसे सहन नहीं हो रहा है।

राम—तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। पर यह राजनीति है। धर्म पर आधारित राज्य में ऐसा हुए बिना उपाय नहीं।

सीता—मुझे वनवास की जो बार-बार याद आ रही है वह इसी लिए। वहां कहाँ था यह भेदभाव ? वह केवट आप को पराया लगा था ?

क्या आप ही ने मुझे नहीं बताया था कि आपने वन्य जाति की शबरी के जूठे बेर खाए थे ? वह वनवास था इसीलिए ऐसे भेदभाव आपके मन में नहीं आते थे। अब पुनः मिलेगा वह वनवास !

राम—ये विचित्र विचार क्यों बार-बार तुम्हारे मन में आ रहे हैं ?

सीता—आप नहीं जानते ये मेरी गर्भावस्था की वासनाएँ हैं। इस भूमि कन्या के उदर का गर्भ तपोवन की भूमि शैय्या पर उत्पन्न होना चाहिए।

राम—अयोध्या की राजलक्ष्मी की ये कैसी विचित्र वासनाएँ हैं ! अच्छा होगा नहीं होगा। तुम्हारी ये इच्छाएँ मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।

सीता—वचन दीजिए मुझे !

राम—एक वचनी राम का इस इस भूमि कन्या को यह वचन है।

(पर्दा)

दूसरा दृश्य

[राज प्रासाद का एक मध्य मार्ग। राजगुरु चिंतावस्था में जा रहे हैं। उनके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ विजय आकर उनके चरणों के निकट प्रणाम करता है।]

विजय—भगवन्—

राजगुरु—(रुक कर पीछे मुड़ कर) कौन हो जी तुम ? विजय ? क्या है रे रजक ?

विजय—एक निर्णय पूछना है।

राजगुरु—यह स्थान क्या निर्णय पूछने के लिए है ?

विजय—नहीं भगवन्, पर आपके उस मंदिर में प्रवेश पाना हम धोबियों के लिए कठिन होता है। आपके आने का यह सुअवसर पाया इसलिए आपके चरणों के पास आ गया हूँ क्षमा कीजिए। एक ही प्रश्न पूछना है। आज्ञा हो तो पूछूँ ?

रामगुप—उठो-उठो क्या है ?

विजय—बड़ा विकट है प्रश्न। अपने ही मुँह से अपनी बेइज्जती की बात कैसे कहूँ ?—ज़रा संकोच होता है—

रामगुप—मेरे पास अब समय नहीं जो पूछना हो झटपट पूछ डालो।

विजय—मेरी पत्नी वासंती—आप तो उसे जानते ही हैं—देवी की सेवा करती है उससे एक अपराध हुआ है अब कैसे कहूँ ?

रामगुप—तो फिर कुछ भी न कहो। मेरे पास अब समय नहीं।

विजय—क्षणभर—क्षणभर ठहरिये भगवन्!—एक महीने के लिए मेरी वह पत्नी मायके गई थी। अब मुझे पता लगा है कि मायके जाने का वह उसका केवल ढोंग था। तीन महीने वह वहाँ रही—मायके में नहीं—एक दस्यु के घर।

रामगुप—दस्यु के घर ?

विजय—हाँ भगवन्! वह एक दस्यु के यहाँ रही थी। और अब यहाँ आई है तो उसे साथ लेकर। बिल्कुल खुले आम निर्लज्जता से उस साथ ले आई है। आते ही मुझसे ठीक से बोली भी नहीं। उस शम्बूक को लिए सीधी देवी के यहाँ—

रामगुप—शम्बूक को साथ लिए ?

विजय—हाँ भगवन् ?

रामगुप—उसी ने शम्बूक की सीतादेवी से भेंट करवाई ?

विजय—और जब मैंने उसे पूछा तो कहती है कि वह उसका माना हुआ भाई है! यह दस्यु हमारा भाई कैसे बन सकता है ? बिल्कुल उसके कान के पास अपना मुँह ले जाकर बातें कर रही थी। और दोनों मुझसे दूर हटकर आपस में कानाफूसी कर रहे थे।

रामगुप—उसका यह व्यवहार संदेहास्पद है अवश्य! तुमने स्वयं देखा था ?

विजय—हाँ भगवन्! सीता देवी से मिलने प्रभु गये थे।

वे वहाँ से चले गए तब वह दौड़ती हुई देवी के अन्तःपुर की ओर फिर से जाने लगी। मैंने उससे पूछा तो उसने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया।

राजपुत्र—क्या कहा उसने ?

विजय—उसने कहा-इस मुंह से कैसे कहूँ वे शब्द ?—उसने कहा हुआ क्या यदि उस वस्तु के यहाँ रही तो ? सीता देवी नहीं रही थीं राक्षस के यहाँ ? यह उसने साफ साफ कह दिया।

राजपुत्र—यह कहा उसने ?

विजय—हाँ भगवन्, यह कहा और तड़ाक से सीता देवी के अन्तःपुर में चली गई।

राजपुत्र—उसका भी क्या दोष है ? हुआ ही ऐसा है।

विजय—आप भी यही कहते हैं भगवन् ?

राजभद्र—मैं ही क्या सारी अयोध्या कह रही है। प्रत्येक व्यक्ति पर स्वर यही कानाफूसी कर रहा है। गुप्तचरों के कानों में यही भनक पड़ती है पर राजाराम से कहने का किसी को साहस नहीं होता और तब वे लोग आकर मुझे बतलाते हैं। मैं भी क्या कर सकता हूँ ? मैं राजगुरु अवश्य हूँ पर मेरे शब्द का यहाँ मूल्य ही क्या है ?

विजय—ऐसी अशुभ बात क्यों कह रहे हैं भगवन् ? आप राजगुरु हैं। प्रभु आपके शब्द को वेदवाक्य के समान मानते हैं।

राजपुत्र—अभी अभी इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया। राजा राम के यहाँ मेरे शब्द का कितना मूल्य है वह मैंने अभी देख लिया।

विजय—क्या हुआ भगवन् ?

राजपुत्र—पहले तुम्हें या कुछ पूछना है, पूछो।

विजय—कार्त्तवी ने जो किया वह अपराध है न ?

राजपुत्र—यह तुम अपना स्वयं देख लो।

विजय—यदि मुझे विश्वास हो जाय कि उसने अपराध किया है तो मैं उसे क्या दण्ड दूँ ?

राजपुत्र—उसे त्याग दो मेरे शब्द का कुछ मूल्य होता तो मैं राजा

राज्य में भी यही कहता।

विजय—पर ऐसा करना निर्बलता न होगी भगवन् ?

राजगुरु—अपना निर्णय मैंने तुम्हें बता दिया। अब तुम जो चाहो करो। जब स्वयं राजा के यहाँ हमारे वचन का मूल्य नहीं तब तुम राज-सेवक भला क्योंकर उसका पालन करने लगे ?

[जाता है। विजय सुन्न सा खड़ा है। इस वार्तालाप को सुनकर सुनती हुई कृत्तिका आगे आकर उसका हाथ पकड़कर उसे हिलाती है। और वह चौंकता है।]

विजय—तुम हो ? कितना चौंक उठा मैं ! मैं समझा वह है !

कृत्तिका—वासंती ? वह इस समय यहाँ क्या आने लगी ! देवी की सहेली है न ? कितनी देर से बातें कर रही है देवी के साथ ?

विजय—तुम्हें थोड़ा पहले आना चाहिए था—

कृत्तिका—कभी की आई हूँ—

विजय—तो कहाँ थी ?

कृत्तिका—तुम्हारी बातचीत सुन रही थी। अब क्या करने वाले हो?

विजय—आज्ञा पालन ! गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन किया जा सकता है कृत्तिका ? मैं रक्षक हूँ राजा नहीं !

कृत्तिका—तो क्या तुम उसे निकाल दोगे ? कहाँ से निकाल दोगे ? इस राजगृह से ?

विजय—अपने घर से निकाल दूँगा। इसके बाद अपने घर में पैर भी न रखने दूँगा।

कृत्तिका—क्यों ?

विजय—वह उस दस्यु के यहाँ रही थी। पराए घर में ! स्त्री जाति का कुछ भी विश्वास नहीं किया जा सकता। यों ही नहीं रही थी उसके घर इतने दिन !

कृत्तिका—और तुम ?

विजय—मैं ? मैं तो नहीं था।

कुशिका—पर यहाँ कम क्या रहा था ? अभी आकर कहो मुझसे ब्याह की बातें करने लगे हो । पर पिछले तीन महीने—

विजय—चुप ! उसकी चर्चा न करो । यह मेरा और तुम्हारा रहस्य है ।

कुशिका—अच्छा ? वह यों ही [illegible] नहीं रही थी ! उसके विरुद्ध कोई प्रमाण भी है तुम्हारे पास ?

विजय—ऐसे प्रमाण कहीं मिला करते हैं ? और इन व्यर्थ की बातों से तुम्हें मतलब ? अब तुम्हारा रास्ता साफ हो गया है । सौत का डर न रहा । बिल्कुल निष्कण्टक राज्य करोगी तुम ?

कशिका—लेकिन अब तक तुमने जो कुछ किया क्या वह अपराध नहीं था ? यदि उसने अपराध किया है तो तुमने भी तो यहाँ मेरे साथ—

विजय—मैं पुरुष हूँ कशिका । अब मजा देखो । गुरुजनों का सहारा मिल गया है । यों छोड़ ना उसे—(कहता कहता जाता है ।)

कुशिका—ये हैं पुरुष ! (जाती है ।)

तीसरा दृश्य

[रात का आगमन है । वासंती सजा रही है । विजय प्रवेश करता है ।]

विजय—यह तुम्हारा काम और कितनी देर चलेगा ?

वासंती—(उसकी ओर न देखते हुए) आपको इससे मतलब ?

विजय—आपके भी हवा लगी जान पड़ती है तुम्हें । सीधा उत्तर नहीं दिया जाता क्यों ?

वासंती—अपने पति होने का अधिकार यहाँ क्यों जता रहे हैं ? यहाँ मैं प्रभु की दासी हूँ । मेरे काम में बाधा उपस्थित न कीजिये ।

विजय—आज तुम्हारे मिजाज बहुत बढ़े हुए जान पड़ते हैं । कोई नई उपाधि मिल गई है शायद सीता देवी से—(उसे कुछ भी न कहते हुए देखकर) तब कितनी भलाई की घुलघुलकर बातें हो रही थीं देवी के साथ ?

वासंती—आपको उससे क्या करना है ?

विजय—मैं तुम्हारा पति हूँ मुझे सब कुछ जानने का अधिकार है।

वासंती—एक बार कह दिया मैंने यहाँ आने के पश्चात् मैं प्रभु की दासी हूँ। पति होने का अधिकार जताना हो तो वह घर में जताया कीजिये।

विजय—यहाँ भी नाता तो वही है।

वासंती—आप भी यहाँ के सेवक ही हैं!

विजय—मेरी बराबरी करना चाहती हो? मेरे कारण तुम यहाँ आईं। तुम मेरी पत्नी न होती तो इस महल के आस पास भी न आ पातीं—(वह झिड़ककर अलग हट जाती है।) तुम्हारे साथ वह कौन आया है?

वासंती—तुम्हें उससे मतलब? वह मेरा भाई है।

विजय—वह काला कलूटा लम्बू तेरा भाई कैसे बना?

वासंती—कैसा भी क्यों न हो वह मेरा माना हुआ भाई है।

विजय—तो अब तुम्हें लम्बू भाने लगे हैं क्यों?

वासंती—चुप रहिये। ऐसी उल्टी सीधी बातें मैं नहीं सुनूँगी।

विजय—सब कुछ साफ-साफ दिखाई दे रहा है। बराबर घुल मिलकर बातें हो रही थीं तुम दोनों की। इतने दिनों के बाद आई—महीने भर के लिए कहकर गई थी और तीन महीने लगा दिये—पर मुझसे एक खबर भी न होगी। उस चोर को लिए सीधी पहुँच गई सीता माई के पास—

वासंती—जीने मरने का प्रश्न था उस बिचारे का—

विजय—होगा! इसलिए क्या मेरी ओर झाँककर भी न देखना चाहिए था?

वासंती—उसे तो पहले सीतामाई से मिलवाना था!

विजय—यह मुझे अभी क्यों न बता दिया? क्यों गई मुझे दुत्कार कर? इसीलिए मुझे सन्देह हुआ।

वासंती—कैसा सन्देह हुआ ?

विजय—अब मूर्ख होने लगा हूँ न मैं ?

वासंती—मैं भी कहीं ऐसी मूर्खा हूँ ?

विजय—पर यह तो पूछता हूँ न ?—कहाँ रही थी ये तीन महीने ?

वासंती—मायके में।

विजय—तो फिर यह कहाँ मिला ?

वासंती—यह मिला अपनी पर्णकुटी में। अमिताभ ऋषि की पर्णकुटी में। वह वहीं रहता है। उधर मैं अपनी मा के साथ गई थी। मेरी मा उस ऋषि की सेविका थी।

विजय—इसके कारण पूछते हो तुम औरत को ! तुम औरतों का कैसे विश्वास किया जाय ? दृष्टि से जरा ओझल होते ही तुम औरतें क्या करोगी कुछ नहीं कहा जा सकता। मुझे विश्वास हो गया है कि—

वासंती—काहे का विश्वास हो गया है ?

विजय—साफ साफ कहने के लिए मुझे बाध्य न करो।

वासंती—क्यों न करो ? जो कहना हो एक बार साफ साफ कह डालिये। मैं सब कुछ सुनने के लिए तैयार हूँ।

विजय—आज से मेरा तुम्हारा सम्बन्ध टूट गया। इसके पश्चात् मेरे घर में पैर भी न रखना। पराए घर में रही थी अब मेरे घर में तुम्हारे लिए स्थान नहीं।

वासंती—रावण के यहाँ तो मैं रही न थी। वह तो राक्षस नहीं है।

विजय—रावण हो तो और दस्यु हो तो बात एक ही है।

वासंती—तो क्या मुझे अग्निपरीक्षा [illegible] के लिए कहनेवाले हैं आप ?

विजय—रहने दो अग्निपरीक्षा ! बड़ों की बातें हैं इसलिये उनकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। कौन करता है अग्नि की परवाह ? तुम पर दाग [illegible] पड़ा। मैं धोबी हूँ कपड़ा फट जाय तो भी दाग निकालने वाला। यह दाग निकलना ही चाहिए। फिर चाहे मेरा संसार ही क्यों न फट जाए, मुझे स्वीकार है।

वासंती—यह रामराज्य है !

विजय—हाँ हाँ रामराज्य है इसीलिये कह रहा हूँ कि तुम्हारा मेरा सम्बन्ध समाप्त हुआ ।

वासंती—मैं सीतामाई के सामने फरियाद करूँगी ।

[राम और लक्ष्मण प्रवेश करते समय उसके उद्गार सुनकर दर वाजे में ही रुक जाते हैं] ।

विजय—(जोर से हँसता है ।) वे क्या बताएँगी ? सारी अयोध्या जो बातें कर रही है उन्हें सुनो । कहते हैं अग्नि परीक्षा ! गुरुदेव से पूछो हुए क्या कह रहे थे ! सब लोग बुरा कह रहे हैं—

वासंती—प्रभु रामचन्द्र को भी ?

विजय—प्रभु को कोई क्यों बुरा कहने लगा ? बुरा कह रहे हैं सीता माई को—

वासंती—ऐसा कहोगे तो तुम्हारी जीभ गल जायगी ।

विजय—कौवे के शाप से ऊंट नहीं मरा करती ! इतने लोग कहते हैं उनकी जिह्वाएँ क्यों न गल गईं ?

[राम एकदम सामने आते हैं । लक्ष्मण पीछे ही खड़े हैं ।]

राम (विजय से) इतने लोग क्या कह रहे हैं ?

[दोनों उनके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम करते हैं ।]

विजय—क्षमा कीजिए देव क्षमा कीजिए ! (उठकर खड़ा होकर हाथ जोड़े थर-थर काँपता हुआ) लोगों को कहते सुना इसलिए मैंने कहा । मुझे क्षमा कीजिए ।

राम—पर सब क्या कहते हैं ?

विजय—किस मुँह से कहूँ ? मन नहीं कहने देता । जीभ सूखी हो जाती है—

राम—मुझे जानना ही चाहिए कि लोग क्या कहते हैं ? तुम लोग मुझे न बताओगे तो मुझे पता कैसे चलेगा ?

विजय—वह बड़ी अशुभ बात है देव !

राम—शुभ हो चाहे अशुभ मैं जानना चाहता हूँ। इस रामराज्य में लोकापवाद को स्थान नहीं मिलना चाहिए। डरो मत विजय कितनी भी अशुभ बात क्यों न हो मैं सुनने के लिए तैयार हूँ। तुम अभय हो। जो है वह साफ-साफ कह डालो।

विजय—बड़ा संकट है यह! (नमस्कार करके) सुनिए देव यह मेरी पत्नी एक महीने के लिए मायके गई थी पर वहाँ एक दस्यु के यहाँ जाकर तीन महीने रही। मुझे इस पर संदेह हुआ। मैंने गुरुदेव से पूछा तो उन्होंने मुझे इसे त्याग देने के लिए कहा—

वासन्ती—(स्वगत) मेरा त्याग करने के लिए कहा गुरुदेव ने?

विजय—(वासन्ती से) हाँ हाँ त्याग करने के लिए कहा। (राम चंद्र की ओर मुड़कर) उसी समय गुरुदेव ने कहा—अब कैसे कहूँ? —उन्होंने उनसे कहा कि सीता देवी के बारे में भी अयोध्या के लोग ऐसा ही संदेह कर रहे हैं—क्षमा कीजिए देव। आगे के शब्द मेरे मुँह से नहीं निकलते।

राम—कहो डरो मत!

विजय—उन्होंने कहा—प्रभु रामचन्द्र पूछते तो मैं उनसे भी यही कहता—

राम—सीता का त्याग करने के लिए कहते?

विजय—(रामचंद्र जी के चरणों पर मस्तक रखके उठकर हाथ जोड़ते हुए) जी।

[राम चुप रहते हैं]

विजय—क्षमा कीजिए प्रभु—पर अब मैं क्या करूँ?

राम—इसे त्याग दो।

वासन्ती—प्रभु?

राम—इस त्याग दो। इस रामराज्य में संदेह के लिए भी स्थान न रहे। निष्कलंक चरित्र के आधार पर ही यह रामराज्य खड़ा है।

वासन्ती—(राम के चरणों पर सिर रखकर) प्रभु की आज्ञा मुझे स्वीकार है।

[जाती है]

विजय— दास को क्षमा कीजिए देव !

राम—मैं तुम्हारा आभारी हूँ विजय। लोकापवाद के कलंक से तुमने मेरी रक्षा की। जाओ ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। (विजय जाने लगता है।) ठहरो विजय सुमंत को इधर भेज दो।

विजय—(क्षण भर चुपचाप राम के मुख की ओर देखकर) सुमंत जी को बुलाऊँ ? किस लिए देव ?

राम—मेरी आज्ञा का पालन करो जाओ। (वह नमस्कार करके जाता है। राम परेशानी में टहलते हुए) क्या करूं लक्ष्मण क्या करूँ ? मन दुविधा में पड़ गया है। बड़ा विकट होता है यह लोकापवाद ! लोग निंदा करते हैं—क्यों निंदा करते हैं वे ? सीता निर्दोष है यह मैं जानता हूँ तुम जानते हो जिन्होंने स्वयं अग्नि परीक्षा नहीं देखी वही तो यह निंदा कर रहे हैं ?—क्या करूं ? इस निंदा की ओर ध्यान न दूं या निर्दोष सीता को त्याग दूं ?

लक्ष्मण—सीता का त्याग ! यह क्या कह रहे हैं आप ?

राम—यह वनवासी राम नहीं कह रहा है दशरथ का पुत्र राम यह नहीं कह रहा है रावण का विजेता भी नहीं कर रहा है यह। लोकाराधना के लिए किसी भी बात की परवाह न करने वाला अयोध्या का राजा राम रघुवंश पर अभिमान करने वाला, रामराज्य का प्रवर्तक राम कह रहा है यह।

[सुमंत आता है। राम को नमस्कार करके हाथ जोड़े खड़ा रहता है।]

राम—सुमंत जी रघुवंश के कई राजाओं की सेवा करते-करते आप बूढ़े हुए हैं। रघुवंश की आन यदि कोई जानता है तो आप। मैं जो पूछ रहा हूँ उसका ठीक-ठीक उत्तर दीजिए, किसी बात का संकोच न कीजिए—

सुमंत—ऐसा कौनसा संकट प्रभु पर आ पड़ा है आज ?

राम—यह कसौटी का समय है। रघुवंश की आन की आज सभी सभी परीक्षा होगी। तनिक भी संकोच न करते हुए मुझे यह बतलाइए कि सीता के बारे में लोग क्या कहते हैं ?

सुमंत—यह प्रश्न प्रभु मुझसे न पूछें तो अच्छा होगा। मैं अनेक वर्षों से लोगों की प्रवृत्ति देखता आ रहा हूँ। सज्जनों की बुराई करने में वे साधारण लोग सदा तत्पर रहते हैं। यह उनका खेल होता है—व्यसन होता है। निंदा के समान मद्य में भी नशा नहीं होता प्रभु !

राम—मैं अपने प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। वह केवल निंदा ही हो सकती है उसमें सत्यांश भी न हो उस निंदा में अभिजात मनोवृत्ति की व्याकुलता भी न हो फिर भी वह निंदा है चारों ओर फैल रही है लोगों के मन कलुषित कर रही है। साधारण जनता की मनोवृत्ति को दूषित करने वाला वह कलंक मिट जाना चाहिए। बताइए सुमंत की हो रही है न इस प्रकार की निंदा ?

सुमंत—यदि मैं नहीं कहूं तो सत्य को छिपाना होगा।

राम—ठीक है न ? तो फिर अब मैं क्या करूं ? राजा दिलीप ऐसे समय क्या करते ? पितामह ने क्या किया होता ? राजा दशरथ की —मेरे पिता की सत्यनिष्ठ शासन व्यवस्था देखी है—उन सब ने ऐसे समय क्या किया होता ?

सुमंत—ऐसा प्रसंग ही न आता उस समय।

राम—अच्छा ? तो फिर रघुवंश के अगले वंशजों को ऐसे समय क्या करना चाहिए इसकी परिपाटी बनाने का भार मुझ पर आ पड़ा है। विवेक की कठोर दृष्टि को सम्मुख रखते हुए मैं क्या निर्णय करूं ?

सुमंत—यहाँ मेरी बुद्धि काम नहीं करती प्रभु।

राम—लक्ष्मण तुम बताओ ऐसे समय मैं क्या करूं ?

लक्ष्मण—मेरा व्रत आज्ञापालन है। किसी भी बात का निर्णय करने का मैंने कभी भी साहस नहीं किया।

राम—मैंने निश्चय कर लिया। सीता का त्याग करने के अतिरिक्त इस समय मुझे और कोई भी मार्ग दिखाई नहीं देता।

सुमंत—यह क्या कह रहे हैं प्रभु? निर्दोष सीता देवी को आप त्याग देंगे? अमर अग्नि परीक्षा द्वारा जिसकी सुवर्ण सी कीर्ति प्रस्थापित हुई है उस अयोध्या की रानी का आप त्याग करेंगे? इसके बजाय आप अग्नि परीक्षा की गाथा इन लोगों को क्यों नहीं बताते?

राम—क्या वे अग्नि परीक्षा की बात नहीं जानते? मेरे कहने से और क्या होगा? उसी समय मैंने सीता को त्याग दिया था पर उसने अग्नि परीक्षा दी। दोष का निराकरण हो गया स्वयं के देवताओं ने उस पर पुष्पवृष्टि की इसीलिए मैंने उसे अपनाया। जिस महान् कार्य के लिए मैंने रावण से युद्ध किया था वह सफल हो गया। सीता के प्रति मोह उस युद्ध का उद्देश्य न था। दुर्जनों का नाश करना था वह हो गया अब सीता राम के साथ रहे या न रहे लोक कल्याण की दृष्टि से दोनों बातें एक सी ही हैं।

सुमंत—लक्ष्मण जी आप ही प्रभु को कुछ समझाइए—

राम—इस समय मैं किसी की भी नहीं सुनूंगा। इस निंदा का उन्मूलन होना ही चाहिए। आज अग्नि परीक्षा का उल्लेख करके मैं लोगों का समाधान करना चाहूं तो वे मुझे स्वार्थी कहेंगे। वे कहेंगे कि सुन्दर स्त्री के प्रति मोह के कारण मैं उसके दोषों को छिपा रहा हूं। मुझ पर इन्द्रिय लोलुपता का आरोप लगाया जायगा। वह आरोप मुझे सहन न होगा। जिसका धन केवल यश है वह यश को स्वयं से भी श्रेष्ठ समझता है। वनवास में प्रमाणित कर दिया है कि इस राम को शरीर सुख का मोह नहीं है। अब यह दूसरी कसौटी है। जो समझते हैं कि सीता के सहवास के कारण मैं वनवास के दुःख सहन कर सका उनके समाधान के लिए मुझे सीता का त्याग करना चाहिए। इस अपवाद को दूर करने के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। मैं ऐसा कोई आचरण न करूंगा जिससे रघुवंश को तनिक भी कलंक लगे। सुमन्त जी रथ तैयार कीजिए

और सीता को ले जाकर गंगा के पार छोड़ आइए। लोगों में फैली हुई इस अपकीर्ति को सहन करना मेरे लिए असह्य हो रहा है।

सुमंत—नहीं प्रभु, नहीं। आज्ञा भंग का दोष मुझे स्वीकार उसके लिए प्रभु जो दण्ड दें वह मैं भोगूँगा पर यह दुष्कर काम हाथों न हो सकेगा। आज इतने सालों से मैंने रघुवंश की सेवा की—क्या रघु के वंशजों को वनवास का मार्ग दिखाने के लिए? कैकयी माता की आज्ञा से जब आपने वनवास स्वीकार किया था उस समय इस सुमंत को ही सारथी का काम करना पड़ा था और अब गर्भवती सीतादेवी को भी वनवास के लिए भेजने का भार आप इस सुमंत पर क्यों डाल रहे हैं? नहीं प्रभो नहीं। प्राण दण्ड स्वीकार कर लूँगा पर आपकी इस आज्ञा का पालन मुझसे न हो सकेगा। मुझे क्षमा कीजिए।

[राम को नमस्कार करके चला जाता है। राम क्षण भर सोचते हुए टहलते रहते हैं।]

राम—लक्ष्मण!

लक्ष्मण—आज्ञा हो?

राम—यह लोकाराधना एक भयंकर परीक्षा है। इसमें अपने पराए का भेद नहीं किया जा सकता। ममता मोह एक ओर रख देना पड़ता है। एक त्याग—निस्वार्थ त्याग के बिना लोकाराधना नहीं होती।

लक्ष्मण—ठीक है, पर क्या आप नहीं सोचते कि इस बारे में तनिक अविचार हो रहा है तनिक शीघ्रता हो रही है? यह मैं समझता हूँ कि राजा का चलन निरापवाद होना चाहिए, पर यह लोकापवाद कैसा है? और क्या यह लोकापवाद साधार है?

राम—एक शब्द भी न कहो जो मैंने निश्चय किया है वह त्रिकाल में भी नहीं बदल सकता।

लक्ष्मण—माता सीता गर्भवती है—

राम—हाँ उन्हें वनवास का दोहद है—

लक्ष्मण—यह वनवास ऐच्छिक है—यह त्याग नहीं!

राम—एक शब्द भी न कहो। सीता का त्याग मैं अवश्य करूंगा कोई कुछ भी कहे पर मेरा निश्चय अब नहीं बदलेगा। इसके पश्चात जो कोई भी इस बारे में मेरा निश्चय बदलने का प्रयत्न करेगा उसका पक्ष लेकर मुझ से विवाद करना चाहेगा—फिर चाहे वह कोई भी हो —मैं उसे अपना शत्रु समझूंगा। बोलो लक्ष्मण मेरी आज्ञा का पालन करोगे या नहीं ?

लक्ष्मण—पिता की आज्ञा से परशुराम ने माता का शिरच्छेद किया था। पिता की आज्ञा मुझे स्वीकार है।

राम—शाबाश ! अब ऐसा करो—गंगापार जाकर स्थान देखने की उसे प्रबल इच्छा हुई है। उसकी इच्छा पूरी करने का मैंने भी उसे वचन दिया है। उसे यह समझा कर कि मैं अपना वह वचन यों पूरा कर रहा हूँ रथ में ले जाओ और गंगापार पहुँचते ही उसे बतलाना कि नगर वासियों ने लगाए कलंक को आगने के लिए राम ने तुम्हें त्याग दिया है।

लक्ष्मण—(सशंक होकर) ऐसा ही बतलाऊँ ?

राम—हाँ-हाँ ऐसा ही बतलाओ। ऋषियों के आश्रम के पास उसे छोड़ कर—

लक्ष्मण—जो आज्ञा।

[लक्ष्मण जाने को है तभी उर्मिला प्रवेश करती है]

उर्मिला—ठहरिए !—

राम—कौन—उर्मिला ?

उर्मिला—जी। आपके आज्ञाधारक छोटे भाई की पत्नी मैं उर्मिला हूँ।

राम—इस समय तुम यहाँ कहाँ ?

उर्मिला—अपने पति की छाया हूँ मैं (लक्ष्मण जाने लगते हैं। उन से) ठहरिए !

लक्ष्मण—नहीं मुझे आज्ञा हुई है कि—

उर्मिला—मैं जानती हूँ। मैं आया हूँ आपकी। जो आपने सुना वह मैंने भी सारा सुन लिया है। (राम से) देव पहले मेरा कहना सुन लीजिए फिर इन्हें जाने की आज्ञा दीजिए।

राम—ठहरो लक्ष्मण—

उर्मिला—इस समय जो मैं कह रही हूँ वह आपके छोटे भाई की पत्नी के नाते से नहीं सीता की बहन के नाते से भी नहीं कह रही हूँ अधिकार के पैरों तले कुचली जाने वाली स्त्री जाति की प्रतिनिधि के नाते। राजा रामचन्द्र यह आप ने क्या सोचा है? आप सीता का त्याग करेंगे?

राम—कहती हो कि तुमने मेरी बातें सुनीं फिर मेरी प्रतिज्ञा नहीं सुनी?

उर्मिला—जी सुनी। आप मुझे धृष्ट समझेंगे—धृष्टता को दिया जाने वाला दण्ड आप मुझे दें तो मैं उसे सहर्ष शिरोधार्य करूँगी पर आपके इस कठोर निर्दय क्रम के विरुद्ध पहले आप को चार बातें सुनाऊँगी।

राम—उर्मिला क्या तुम जरा भी मेरा हृदय नहीं पहचानती? सीता को त्यागने में क्या मुझे आनन्द हो रहा है। यह एक अत्यंत कठोर परीक्षा है। लोकाराधना के लिए की हुई यह एक आत्मसाधना है। सीता ने एक ही बार परीक्षा दी प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला से झुलसकर वह एक ही बार निकली पर मेरी यह परीक्षा उस अग्नि परीक्षा से भी कठिन है इस बात की तुम्हें कल्पना भी है कि प्रियतमा के विरह की भड़कती हुई ज्वाला में मुझे जन्म भर झुलसना पड़ेगा?

उर्मिला—आपको भी कल्पना है कि ऐसी ही परीक्षा सीता बहन को भी वैसी पड़ेगी अपनी इच्छा के विरुद्ध वैसी पड़ेगी? पहले की परीक्षा स्वेच्छा से थी यह जबर्दस्ती है—अत्यंत निर्दय घोर कठोर जबर्दस्ती है। दया की मूर्ति के मुख से यह कठोर निर्णय कैसे निकला?

राम—लोकाराधना के लिए। इस लोकाराधना के सामने जब

मुझे क्या माया, कुल जाति की चिंता नहीं तब सीता की भत्सना ही क्या ?

उर्मिला—लोकाराधना के लिए क्या छोड़िए माया छोड़िए, कुल जाति छोड़िए, सीता को भी छोड़ दीजिए, पर रामराज्य के संस्थापक रघुवंश के दीपक राम क्या सत्य का त्याग करगे ? न्याय का त्याग करगे ?

राम—एक शब्द भी न कहो ! अच्छी तरह विचार करके ही मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ।

उर्मिला—अच्छा ? तो सीता बहन को यहीं बुला लीजिए। उसे बताइए। मुझे विश्वास है कि आपके वचन के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करेगी। वह त्याग करने का अवसर उसे दीजिए। उस त्याग का श्रेय उसे मिलने दीजिए। —

राम—यह अब नहीं हो सकता—

उर्मिला—क्यों ? रावण जैसे प्रचंड योद्धा का नाश करने वाले महा पराक्रमी राम को सीता को सामने बुला कर कहने में भय लगता है ? इस प्रकार छिप कर बाण मारने के लिये सीता बाली नहीं !

लक्ष्मण—उर्मिला यह मर्यादा का अतिक्रमण हो रहा है।

उर्मिला—जी, मर्यादा छोड़ कर ही मैं बोल रही हूँ। चौदह साल मैं विरह की ज्वाला में जल रही थी। उन भयंकर यातनाओं की अनुभूति मुझे है इसीलिए बोल रही हूँ। सीता बहन ने भी उस विरह का अनुभव किया है पर केवल छः महीने उस छः महीनों के विरह के समय उसे पति से फिर से भेंट होने की आशा थी पर यह विरह अथाह है। यहाँ आशा के लिए स्थान नहीं। उस समय रावण उसे जबर्दस्ती से ले गया था उतनी ही रावणीय जबरदस्ती से आज आप उसका त्याग कर रहे हैं। आज्ञापालन के व्रत के नीचे दबे हुए मेरे इस पति द्वारा आप उसे निर्वासित कर रहे हैं। अपने इस पाप का भागी आप इन्हें क्यों बना रहे हैं ?

लक्ष्मण—उर्मिला मेरे व्रतपालन पर तुम आघात न करो। राम

वासन्ती—वह देखिए उस पार देखिए, वह देखिए रथ जा रहा है अयोध्या की ओर।

सीता—प्रभु! वे क्यों इस प्रकार चले गए? मुझसे कहा भी नहीं। मैं यहाँ अकेली हूँ इसका उन्होंने विचार भी नहीं किया? मुझे इस प्रकार छोड़कर क्यों चले गए?

वासन्ती—हाँ छोड़कर चले गए!

सीता—क्या कहती हो वासंती?

वासन्ती—कितना कठोर होता है पुरुष का हृदय! दया ममता तो दूर रही साधारण मनुष्यता भी नहीं!

सीता—क्या कह रही हो वासंती? लक्ष्मण मुझे छोड़कर चले गए?

वासन्ती—जी छोड़कर चले गए!

सीता—क्यों?

वासन्ती—राजाज्ञा थी!

सीता—राजाज्ञा थी? कहाँ के राजा ने यह आज्ञा दी थी?

वासन्ती—अयोध्या के राजा श्री रामचन्द्र जी ने—उन्होंने यह आज्ञा दी थी!

सीता—मैं अयोध्या की रानी हूँ—

वासन्ती—जी हाँ—आप अयोध्या की रानी हैं—राजा नहीं! आज्ञा दिया करता है राजा। इस राजाज्ञा ने ही अयोध्या की रानी का सीमा पार किया है।

सीता—किस लिए? मैंने कौनसा अपराध किया है?

वासन्ती—राजा की इच्छा! (क्षण भर रुककर) लोकापवाद के लगे हुए कलंक को मिटाने के लिए—लोकाराधना के लिए—राजा राम ने अपनी धर्मपत्नी का यह दण्ड दिया है।

सीता—लोकापवाद? कैसा लोकापवाद?

वासन्ती—रावण के यहाँ छः महीने रहने के कारण लोकापवाद!

सीता—अग्निपरीक्षा देने पर भी?

वासन्ती—यह यहाँ किसने देखी है ?

सीता—और लोगों का यह कहना श्रीराम को बींध गया ?

वासन्ती—यह मैं नहीं जानती। उन्होंने एकदम तय किया—

सीता—कि मुझे त्याग देंगे ? कहो कुछ लोगों के केवल मिथ्या कथन के कारण ही क्या मुझे यह दण्ड दिया गया है ? यह तुम्हें किसने बताया ?

वासन्ती—उर्मिला देवी ने। उन्होंने मुझे यहाँ भेजा। वे प्रभु के पाँव पकड़ पड़ी थी पर उसका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ।

सीता—मेरे लिए उर्मिला लड़ी ! और उसका पति इस तपोवन में मुझ अकेली को छोड़कर बिना कुछ बोले भाग गया ! भाग्य का कैसा विचित्र खेल है यह ! और यह एक साधारण दासी अपना घरबार छोड़कर मेरे लिए यहाँ दौड़ी आई।

वासन्ती—नहीं देवी मेरे ही कारण यह सब हुआ है।

सीता—तेरे कारण ? तेरा इससे क्या सम्बन्ध है ?

वासन्ती—मेरा भी त्याग किया है मेरे पति ने ! राजगुरु की आज्ञा से—प्रभु रामचन्द्र जी की आज्ञा से—

सीता—युग के संसार नष्ट करने की यह बुद्धि अयोध्या के सम्राट् को कैसे हुई ?

वासन्ती—यह रामराज्य है। प्रभु की प्रतिज्ञा है कि यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र निष्कलंक रहे।

सीता—इसीलिए मुझे निकाल दिया ?

वासन्ती—हाँ देवी।

सीता—तो फिर गर्भावस्था की वासनाओं की पूर्ति के लिए मुझे तपोवन भेजने की बात सत्य नहीं है ?

वासन्ती—इससे दोनों काम हो गए। वासनाएँ भी पूरी की गईं और दण्ड भी मिल गया।

[सीता निकट एक शिलाखण्ड पर बैठ जाती है। कुछ ही क्षण भर वैसे ही बैठी रहती है।]

सीता—मुझे दण्ड मिला!—कोई भी अपराध न करते हुए भी मुझे दण्ड दिया गया। फिर मुझ में जो वासनाएँ जाग उठी थी वह कैसी थीं? वन की थी या तपोवन में जाकर पुराने आश्रम की स्मृति जगाने की थी? कैसी है ये गर्भावस्था की इच्छाएँ! कैसा है दण्ड! यह बात मुझसे यहीं क्यों नहीं कही? मैं लोगों के सामने जाकर खड़ी हो जाती। अपनी बात उन्हें सुनाती। मेरा कहना उन्हें न जँचता तो मैं स्वयं ही राज्य का त्याग कर देती। स्वेच्छा से वनवास स्वीकार करती या प्राण ही दे देती। नहीं नहीं! यह मैंने क्या कहा! मैं गर्भवती हूँ। प्राण देने का मुझे अधिकार नहीं है। रघुवंश के अंकुर की हत्या मेरे हाथों कैसे हो सकती है!—

वासंती—शान्त होइए देवी शान्त होइए!

सीता—क्यों इस प्रकार मुझे धोखा दिया गया? क्या वे समझते थे कि साफ-साफ कह देने से मैं उनकी आज्ञा का पालन नहीं करती? और आज्ञा का पालन न करके भी मैं क्या करती? (उत्तेजित होकर) यह क्या किया देव क्या किया? निष्कलंक होने के लिए क्यों अपने पर यह नया कलंक लगा लिया? दुर्जनों से की हुई निंदा को क्यों आपने इतना महत्त्व दिया? (उठकर वासन्ती के गले लिपट कर) क्या करूँ वासंती क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अब किसका आश्रय लूँ?

वासन्ती—मैं जो हूँ?

सीता—तू क्या करेगी? तुझे घर नहीं, मुझे भी घर नहीं। वनवास है पर किसी का सहारा नहीं!

वासन्ती—ऐसा क्यों कहती हैं देवी? दिन रात मैं आपकी सेवा करूँगी। वनों में भटक भटक कर कन्द मूल फल लाऊँगी—

सीता—पर हम रहेंगी कहाँ?

वासन्ती—ये सामने ऋषियों के आश्रम दिखाई पड़ रहे हैं। ऋषि

राजा नहीं कोई न कोई हमें आश्रय अवश्य देगा।

सीता—अयोध्या की सम्राज्ञी मैं में किसी के द्वार भीख माँगने जाऊँ ? पराए आश्रय के लिए मैं याचना करूँ ? नहीं वासंती उस समय भी हमने स्वेच्छा से ही वनवास स्वीकार किया था पर उस समय भी हमने कभी किसी के सामने याचना नहीं की। उस समय हमने अपने हाथों से पर्णकुटी बनाई थी अपना घर बनाया तभी उसके नीचे आश्रय लिया था।

वासन्ती—नहीं हम अब भी करेंगी।

सीता—यह कैसे हो सकता है ? उस समय तो सामर्थ्यवान् पुरुषों का आधार था। उन्होंने कष्ट किया था मैंने तो केवल सहायता की थी। मैं अब ऐसी दुर्बल हो गई हूँ—और तू भी क्या कर सकती है ? दासी होने पर भी तुम राजगृह की दासी हो। इतने साल वनवास में रहकर हमें कष्ट उठाने का अभ्यास हो गया था तब तुम अयोध्या में थी वनवास के वे कष्ट तुम कैसे सोच सकोगी ? (रक्तावेश में) यह क्या किया देव ? अपनी इस साध्वी पत्नी को जीवित रखकर मृत्यु की कठोर यातनाएँ क्यों दे दी आपने ?

वासन्ती—शान्त होइए देवी, शान्त होइए।

सीता—कैसे शान्त होऊँ ? नाथ होते हुए मैं अनाथ हो गई रानी होते हुए भिखारिन बन गई घर-बार होते हुए निराधार हो गई। कौन इस समय मेरी रक्षा करेगा ?

[शम्बूक आता है। सीता को देखते ही दौड़कर उसके पैरों पर सिर रख देता है।]

शम्बूक—मा !—मा !—क्या इस दीन को दर्शन देने आई हो ?

सीता—नहीं वत्स तुम सी ही मैं भी निर्वासित हूँ। तुम जैसी ही राज दण्ड की पात्र बन गई हूँ। मैं तुम सी ही अनाथ हो गई हूँ—पथ भ्रष्ट हो गई हूँ।

शम्बूक—और तुम वासंती ?—

वासन्ती—मैं भी।

शम्बूक—यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?

सीता—यह सत्य है। मैं किसी का आश्रय ढूँढ रही थी। उस वन प्रान्त में पति के प्रेम का ऋण मेरे मस्तक पर था। इस वनवास में—

शम्बूक—इस युग का तुम्हें ज्ञान हुआ है मां ?

सीता—युग ज्ञान! (जरा हँसकर) उसमें अभी देर है।

शम्बूक—क्यों मां ? शूद्र होने के कारण मुझे अज्ञान समझती हो ? युग बदलने के लिए अज्ञान समझती हो ?

सीता—तुम भाई जो हो भूमि-कन्या के।

शम्बूक—बहन समझकर मिलने आया था पर क्या यह बहन नहीं मां थी वीरों की जननी थी मां राज वैभव को त्याग कर क्या इस युग का समाचार लेने आई है ?

सीता—नहीं शम्बूक नहीं। यह निर्वासितों की नयी बस्ती है यहाँ।

शम्बूक—पर क्यों ? किसने निर्वासित किया आपको ?

वासन्ती—सम्राट् ने! लोकाराधना के लिए!—क्या प्रजा प्रेम के साथ-साथ प्रिय पत्नि को भी गणना करने वाले राजा राम ने ?

सीता—बस करो यह गाथा। शम्बूक अब हमें यहाँ बस्ती बनाकर रहना है। पास-पास ऐसा कोई स्थान है ?

शम्बूक—यह वाल्मीकि मुनी का आश्रम है। उन्हीं ने मुझे आश्रय दिया है। रामायण के रचयिता क्या वे सीता देवी को आश्रय नहीं देंगे ?

सीता—वाल्मीकि मुनी! रामायण के रचयिता ? प्रथम वनवास में हमने कभी यह आश्रम नहीं देखा था। तुमने कहा वे रामायण के रचयिता हैं ?

शम्बूक—जी हाँ। रामचरित की भविष्य वाणी उन्होंने पहले ही की थी। यही वह रामायण है! (उठाकर दिखाकर) फिर पढ़िए न इसको यहीं ? (सीता चुप रहती है।) जानती हैं ?

सीता—नहीं शम्बूक यह अयोध्या की रानी जन्मभर भटको बनो

ही मांगी है उसने कभी किसी से कुछ मांगा ही नहीं है !

वासंती—वाल्मीकि मुनि बड़े दयालु हैं। उनके यहां जाकर कुछ मांगने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी ।

सीता—मुझे किसी के भी यहां जाकर कुछ नहीं मांगना है। तू इस शम्बूक के साथ जा वासंती। यदि मुझे किसी के पास कुछ मांगना पड़ा तो मैं अपनी मां से मांगूंगी। संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है जो मेरी भूमि माता नहीं दे सकती ? तुम दोनों जाओ। (जाती है।)

वासंती—कहाँ जाएंगी वे ? ठहरो शम्बूक यहीं ठहरो। मैं देख आती हूँ वे कहाँ गई हैं ।

[वह सीता के पीछे-पीछे जाती है। शम्बूक तत्परता जिस ओर वे दोनों गई हैं उस ओर देखता रहता है दूसरी ओर से सुमन्त प्रवेश करता है।

सुमन्त—(शम्बूक से) इस स्थान का नाम मुझे बताओगे बेटा ?

शम्बूक—कौन ? सुमंत जी ! (उनके पैरों पर मस्तक रखके खड़ा होकर) यह ऋषि का आश्रम है सुमंत जी ।

सुमन्त—बेटा मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मुझे ठीक से दिखाई नहीं देता। मुझे एक बात बताओगे ? अभी इधर किसी तेजस्वी स्त्री को आते देखा है ?

शम्बूक—हाँ। मैं समझ गया आप किसके बारे में पूछ-ताछ कर रहे हैं। सीता देवी का वृत्तान्त ही चाहिए है न आपको ?

सुमन्त—हाँ बेटा तुम जानते हो ?

शम्बूक—हाँ सुमन्त जी वे यहीं आई थीं। आप उनसे मिलना चाहते हैं ?

सुमन्त—कैसे कहूँ कि मिलना चाहता हूँ ? इतना ही जान लेने से कि वे सकुशल हैं उन्हें आश्रय मिल गया है मेरा समाधान हो जायगा।

शम्बूक—(अंगुली उस ओर उठाते हुए) वह देखिये सीता देवी ही नदी के किनारे-किनारे आ रही हैं। वासंती उनके साथ है ।

सुमन्त—मुझे ठीक से दिखाई नहीं देता बेटा। वासंती है न उनके साथ ? तब ठीक है। मेरी आधी चिन्ता मिट गई।

सम्बूक—उन्हें यहाँ ले आऊँ ? (ठहरकर)—या आपही मेरे साथ चलते हैं ?

सुमन्त—नहीं नहीं। उनके सामने जाना भी मेरे लिए कठिन है। तुम कौन हो बेटा ?

सम्बूक—मैं एक शूद्र हूँ। मेरा नाम शम्बूक है।

सुमन्त—राजगुरु की आज्ञा से निर्वासित शम्बूक क्या तुम्ही हो ?

शम्बूक—हाँ सुमंत जी प्रभु की कृपा के लिए अयोग्य प्रमाणित हुआ मैं ही वह शूद्र हूँ।

सुमंत—और वासंती भी यहीं आई है ? उसे कैसे पता लगा देवी का ?

शम्बूक—मैं नहीं जानता सुमंत जी अभी और उनकी भेंट अभी-अभी हुई है।

सुमंत—उनसे तुम्हारी भेंट हुई ? फिर वे क्यों चली गई ?

शम्बूक—यह आप उन्हीं से पूछ लीजिए, मैं ले चलता हूँ आपको उनके पास।

सुमंत—नहीं नहीं। उनका कुशल मिला मेरा काम हो गया बस इतना ही जानने के लिए मैं यहाँ आया था।

सम्बूक—आपको प्रभु ने भेजा था ?

सुमंत—नहीं शम्बूक समझ लो मैं अपने आप ही आ गया। मेरा बूढ़ा प्राण व्याकुल होने लगा इसलिए आ गया। यह निर्दयता का काम करने का भार प्रभु ने मुझ पर छोड़ा था। मैंने उसे अस्वीकार कर दिया प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन किया। प्रभु की सेवा से अब मैं वंचित हो गया हूँ शम्बूक।

सम्बूक—यानि ? क्या प्रभु ने आपको भी निर्वासित कर दिया है ?

सुमंत—नहीं शम्बूक उन्होंने मुझे अपनी सेवा से मुक्त कर दिया है।

आज इतने सालों से रघुवंश की सेवा करते-करते मेरे बाल सफेद हो गए पर ऐसा अपमान सहन करने का दुर्भाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ था ! क्या इसीलिए अभी तक मैं जीवित था यह सोच कर मेरा हृदय टुकड़े टुकड़े होगया ! कितना कठोर है राजाराम का हृदय !

शम्बूक—मुझे भी उसका अनुभव है।

सुमंत—ऐसी बात नहीं शम्बूक। प्रभु कर्तव्य के स्थान पर कठोर हैं। यह निर्दयता नहीं। लोकाराधना के लिए महान् आत्माओं को ऐसा ही कठोर बनना पड़ता है।

शम्बूक—तपोवन में पला हूँ राजनीति की ये बातें मैं नहीं जानता।

सुमंत—राजनीति की बातें नहीं शम्बूक। जिस पर राज्य-कार्य चलाने का दायित्व होता है उसका मार्ग निरन्तर कठिन रहता है। हम है सामान्य लोग सामान्य व्यक्ति जिसे निर्दयता समझता है वह राज्य कर्त्ता की न्याय निष्ठुरता होती है। फिर भी उसे तथावत् स्वीकार कर लेना कठिन होता है इसीलिए तो मैंने प्रभु की आज्ञा की अवज्ञा की। अवज्ञा की और उसके लिए दण्ड भी भोगा पर जी न माना। सोचा न जाने क्या बीती होगी सीता देवी के साथ ? और तत्काल रथ तैयार करके खोजता चला आया।

शम्बूक—पर अयोध्या के राजप्रासाद में क्या किसी पर असर नहीं हुआ ?

सुमंत—असर न हो यह कैसे हो सकता है ? चारों ओर उदासीनता छायी है वहाँ। कोई किसी से बात नहीं करता कोई किसी की ओर नहीं देखता एक दूसरे की कोई पूछताछ नहीं करता। बुरी दशा हो रही है उस राजगृह की।

शम्बूक—तेज की मूर्ति के चले जाने से अयोध्या निस्तेज हो गई है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? (वासन्ती आती है।) आओ वासन्ती अच्छा हुआ जो तुम आ गईं।

वासन्ती—(सुमन्त को नमस्कार करके) सीता देवी की दासी वासंती सुमन्त जी को नमस्कार करती है।

सुमन्त—क्या आशीर्वाद दूँ मैं तुम्हें? 'चिरंजीव हो' कहूँ तो तुम बार-बार की दुःखी हो। 'सौभाग्यवती भव' कहूँ तो पति ने तुम्हें त्याग दिया है। आशीर्वाद बना ही है इसलिए कहता हूँ सीता देवी की सेवा करके कृतार्थ हो।

वासन्ती—आप यहाँ कैसे आए?

सुमन्त—मुझे उर्मिला देवी ने भेजा है। मेरा प्राण तो व्याकुल हो ही रहा था। अभी तक राजमाताओं को भी कोई समाचार नहीं मिला था। उन्होंने भी मुझे आज्ञा दी चारों ओर अंधकार छा रहा है। लक्ष्मण जी का पता लगाता चला आया हूँ। नदी किनारे पर लक्ष्मण जी रथ वापिस ले जाते हुए मिले थे उन्होंने इस स्थान का पता बताया। अब वापिस जाकर क्या बताऊँ?

वासन्ती—किसे? प्रभु को?

सुमन्त—प्रभु राजकार्य में उलझे हुए हैं। उन्हें घड़ी भर भी अवकाश नहीं मिलता। उनके पास इस सब के लिए समय कहाँ है?—कहाँ है सीता देवी?

वासन्ती—(अँगुली से इशारा करके) वह देखिए वे गंगा की बालू में बैठी हुई हैं। उन्हें समझाने का मैंने कितना प्रयत्न किया पर वे अपना हठ छोड़ने के लिए तैयार नहीं। गर्भवती होने के कारण उनका स्वास्थ्य नाजुक हो गया है। यह शम्बूक कह रहा था वाल्मीकि जी के आश्रम में चलें—

सुमन्त—क्या यह वाल्मीकि ऋषि का आश्रम है?

शम्बूक—हाँ सुमन्त जी यह वाल्मीकि मुनि का आश्रम है। राजा दशरथ के मित्र राजा जनक के आत्मीय तथा रामायण के रचयिता वाल्मीकि मुनि का ही यह आश्रम है।

सुमन्त—तो अब मेरी सारी चिंता मिट गई। सीता देवी को यहाँ अवश्य आश्रय मिल जायगा।

वासन्ती—आश्रय तो मिल जायगा पर आश्रय माँगने के लिए कौन जाय? आश्रय के लिए सीता देवी किसी के पास जाने के लिए तैयार नहीं। गर्भावस्था के कारण उनका स्वास्थ्य वैसे ही नाजुक हो रहा है और उस पर यह हठ। क्या किया जाय अब?

सुमन्त—उनका कहना ठीक है। वे किसी के भी द्वार पर नहीं जायगी और मैं भी यही कहूँगा कि उन्हें किसी के द्वार पर न जाना चाहिए। वे रानी हैं राजा राम की रानी हैं वे स्वाभिमान कैसे भुला दें?

सम्बूक—बड़ा विकट होता है अभिमान—यह स्वाभिमान। आत्म प्रतिष्ठा के इस अभिमान को रोकना कितना कठिन होता है इस बात की मुझे भली भाँति कल्पना है।

वासन्ती—तो इसमें से मार्ग कैसे निकले?

सुमन्त—एक उपाय है, यदि सम्बूक चाहे तो।

सम्बूक—क्या उपाय?

सुमन्त—वाल्मीकि मुनी को ही यहाँ लाया जाय। वे ही सीता देवी से आश्रम में चलने के लिए कहें। उनके वचन की अवहेलना करना उनके लिए कठिन होगा। अब मैं जाता हूँ। किस मुंह से तुमसे कहूँ सम्बूक—प्राणों पर बीत सी रही है। तुम रामराज्य के अपराधी हो—निर्वासित हो—और तुम्ही से याचना करने का समय मुझ पर आया है? कैसा दुर्भाग्य है! अब इस दुर्भाग्य में से ही मार्ग निकालना है। इसका दायित्व मैं तुम्हें सौंपता हूँ। तुम्हारे 'हाँ' कहते ही मैं निश्चित होकर अयोध्या लौट जाऊँगा। उर्मिला बधी सहित सारी माताएं मेरे लौटने की ओर दृष्टि लगाए बैठी होंगी उन्हें यह समाचार देना है। यह समझ सीता देवी को यहाँ वाल्मीकि मुनी के आश्रम में आश्रय मिल गया है यह समझकर ही मैं यहाँ से जा रहा हूँ।

[एकदम चला जाता है।]

शम्बूक—नमस्कार करने के लिए भी इन्होंने समय न दिया। इतनी क्या जल्दी थी ?

वासंती—वे देवी के सामने जाने से डर रहे थे।

शम्बूक—ऐसा क्यों हुआ ? यह दुबारा वनवास उनके हिस्से में क्यों कर आया ?

वासंती—देवी रावण के यहाँ छः माह तक बन्दिनी थीं। पुरवासियों ने देवी पर संदेह करना आरम्भ किया—

शम्बूक—देवी के चरित्र पर संदेह ?

वासंती—हाँ। सारी अयोध्या जब इसी बात की चर्चा करने लगी तो प्रभु रामचन्द्र बड़े संकट में पड़ गए और उन्होंने देवी को त्याग दिया।

शम्बूक—यही है वह लोकाराधना ! कितना कठोर है यह बाना ! अब मुझे मेरे पाए हुए दण्ड के बारे में तनिक भी खेद नहीं। जहाँ प्रत्यक्ष सम्राज्ञी को दण्ड मिलता है अपराध साबित हुए बिना ही केवल संदेह पर दण्ड मिलता है वहाँ मैं तो प्रत्यक्ष अपराधी हूँ। ब्राह्मण धर्म की दृष्टि से दुराचारी—मुझे यह दण्ड मिला तो आश्चर्य किस बात का ? मैं समझता हूँ—

वासंती—ठहरो शम्बूक। वह देखो सीता देवी इधर ही आ रही हैं। अभी जाओ और वाल्मीकि मुनी को जल्दी से ले आओ।

[शम्बूक जल्दी-जल्दी जाता है। वासंती चुपचाप कुछ देर सामने देखती रहती है तभी अत्यंत शान्ति से धीमे-धीमे कदम रखती सीता प्रवेश करती है।]

सीता—अन्धकार ! इस अन्धकार ने मुझे चारों ओर से जकड़ लिया है ! कहीं मार्ग नहीं दिखाई पड़ता ! ना वासंती अब मुझसे यह सहन नहीं होता ! जीवन समाप्त हुआ सा लग रहा है मुझे। कहाँ वह वनवास और कहाँ यह वनवास ! कितने उत्साह से आई थी मैं ! वे पुरानी स्मृतियाँ ! इसी गंगा के तट पर मैंने कितने आनन्द से क्रीड़ाएँ

की थी ! उसी आनन्द का दुबारा अनुभव करने के लिए किनारा उत्साह से यहाँ आई थी ? कहाँ गया वह आनन्द ? क्या दुबारा वह आनन्द मिलेगा ही नहीं ? गंगा के उस निर्मल प्रवाह की ओर टकटकी बाँधे बैठी थी। लहरों पर लहरें उठ रही थीं। वायु के मंद झोंकों से उस धीमे पानी पर मधुर-मधुर तरंगें बन रही थीं ! पर इधर मेरे हृदय में बिजलियाँ कड़क रही थीं ! मन बड़ा उत्तेजित हो उठा था वासंती ! लगा कि दौड़ती हुई जाऊँ और गंगा में समाजाऊँ —

वासंती—आपत्ति टले ! यह क्या कह रही हैं देवी ?

सीता—क्षण भर ऐसा लगा अवश्य। अपमान की अनुभूति से घायल हुए हृदय से क्षण भर के लिए ऐसी अशुभ पुकार उठी अवश्य ! पर तभी सोचा कि जिस प्रकार मैं राम की प्रिय पत्नी हूँ उसी प्रकार क्या उनकी प्रिय शिष्या नहीं हूँ ? उन्होंने मेरा त्याग किया अवश्य पर वह करते समय क्या उनके अन्तःकरण को यातनाएं न हुई होंगी ? उन यातनाओं का अनुभव मैं न कर सकूं तो फिर मैं उनकी अर्द्धांगिनी कैसी ? उन्होंने वह सब सहन किया और मैं एक भीरु की भाँति आत्म घात करूँ ? लंका में मैं बराबर छः मास तक विरहानल में जल रही थी। उन यातनाओं को तब मैंने सहन किया। वह मेरा प्रथम अनुभव था। जिस प्रकार छः मास सहन किया उसी प्रकार अब आजीवन सहती रहूँगी ! सूर्यवंश का अंकुर मेरे उदर में है मुझे उसे बचाए रखना चाहिए। सूर्यवंश का वह अंकुर उत्पन्न होते ही सूर्य की ओर दृष्टि जमाए मैं आजीवन तपस्या करूँगी श्रीराम के चरणारविंद का फिर एक बार दर्शन करूँगी और उसके पश्चात् ही इस देह का त्याग करूँगी। डरो मत वासंती, मैं आत्मघात नहीं करूँगी। भवितव्यता पर मुझे विश्वास है। मैं भीरु नहीं हूँ। प्रश्न इतना ही है कि मेरी रक्षा कैसे होगी ?

वासंती—आपने अनेक लोगों को आश्रय दिया है क्या उसका कुछ भी फल न मिलेगा ?

सीता—क्या उस की आज्ञा से ही मैंने आश्रय लिया था ? जो कुछ कर्तव्य समझ कर किया उसके बदले की अपेक्षा मैं क्यों कर करूं ? (निःश्वास छोड़कर) थक गया है प्राण—

वासंती—अयोध्या में चारों ओर हाहाकार मचा होगा।

सीता—अब अयोध्या की याद न दिलाओ। अयोध्या ने मुझे छोड़ दिया और मैंने अयोध्या को। अयोध्या को याद करती रही तो जी न सकूँगी मैं। वह सब अब न रहा। यह मेरा दूसरा जन्म है। अग्नि परीक्षा के पश्चात वह दूसरा जन्म था और अब यह तीसरा जन्म है। पूर्व जन्म की भी किसी को याद रहती है ? यही बात है ! उस पुराने इतिहास की याद बनाए रखूं तो मैं इस नए जीवन को सहन न कर सकूंगी। (कान पर हाथ रखकर) क्या होने वाला है अब ? कुछ बीत चुका है वर्तमान इस प्रकार दुःखमय है भविष्य का धुंधला चित्र भी आँखों के सामने नहीं आता—क्या करूं ? मुझे कौन इस अन्धकार में से मार्ग दिखाएगा ?

[आगे आगे शम्बूक और उसके पीछे वाल्मीकि प्रवेश करते हैं।]

शम्बूक—(सीता के निकट आकर) मां ये वाल्मीकि मुनि—[सीता एकदम आकर उनके चरणों पर मस्तक रखती है।]

वाल्मीकि—पुत्रवती भव !

सीता—तो क्या कल्पवृक्ष के नीचे बैठी थी मैं ?

वाल्मीकि—तुम सर्वदा ही कल्पवृक्ष के नीचे ही बैठी रही हो !

सीता—उस समय हम यहाँ आए थे पर आपके दर्शन नहीं हो पाये थे। आज आन पाया है तो दुर्भाग्य के समय

वाल्मीकि—ऐसा क्यों कहती हो बालिके ? मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। इस प्रकार अभिमान क्यों लिए रही बेटी ? मेरे आश्रम में क्या न चली आईं ?

सीता—कैसे आती भगवन् ? हम वनवासी थे तो भी मेरे पति के

प्राण रक्षा की याचना लिए दैत्यों से डर कर ऋषि-मुनि आया करते थे। उस अभयदान देने वाले धनुर्धारी राम की पत्नी आश्रय के लिए औरों के द्वार जाय?

वाल्मीकि—ऐसा क्यों कहती हो बेटी? तुम्हारे ससुर का प्रिय सखा मिथिलेश का परम बन्धु रघुवंश का पुराना मित्र दोनों वंशों से इतना निकट सम्बन्ध होते हुए भी मुझे पराया कहती हो। तुम परदेश में रहने वाले अपने पिता के घर आई हो बेटी।

सीता—मैं यहाँ क्यों आई हूँ यह आप जानते हैं भगवन्?

वाल्मीकि—मैं सब जानता हूँ। झूठे लोकापवाद के भय से राम ने तुम्हें त्याग दिया है। लोक-निंदा का दुःख असहनीय होने के कारण उन्होंने यह कठोर निश्चय किया। यह निश्चय होगा कठोर भी होगा पर मैं इससे सहमत नहीं। तीनों लोकों का काँटा उखाड़ फेंकने का सामर्थ्य जिसमें है वह इन ग्राम कंटकों की क्यों परवाह करे? राजाराम सत्य प्रतिज्ञ है राजाराम आत्मश्लाघी नहीं राजाराम दुराग्रही भी नहीं। फिर भी तुम्हारे साथ उन्होंने जो यह व्यवहार किया है वह एकदम सौजन्य-नाशक है।

सीता—ऐसा न कहिए भगवन्—

वाल्मीकि—सत्य निर्मम होता है बेटी। सत्य बात कहते हुए मैं किसी की क्यों परवाह करूँ? इस सौजन्यनाशक व्यवहार के कारण मुझे राम पर क्रोध आता है।

सीता—इतने कठोर क्यों बन रहे हैं भगवन्?

वाल्मीकि—प्रिय के साथ प्रिय और कठोर के साथ कठोर होना ही हमारी टेक है बेटी! स्वयं भगवान की छाती में लात मारने वाले भृगु का मैं वंशज हूँ। जानती हो न तुम? किसी का भी दुर्व्यवहार मुझसे सहन नहीं होता—फिर चाहे वह साधारण मनुष्य हो चाहे रामराज्य का प्रवर्तक अयोध्या का राजा राम हो। मैं बुरे को बुरा ही कहूँगा ही इसी

लिए न मैंने रामायण लिखा ? बड़ी स्पष्टता से मैंने यह काव्य लिखा है। न किसी के दोषों पर आवरण डाला है और न ही किसी के गुणों की व्यर्थ स्तुति की है। राम ने तुम्हें त्याग कर अन्याय किया है। सत्य की हत्या की है—(सीता विस्मयता से सिर नीचा कर लेती है।) अच्छा अच्छा तुम्हें मेरी बातें अप्रिय लग रही हों तो अब मैं कुछ भी नहीं कहता। चलो अब मेरे साथ।

सीता—(क्षण भर चुप रहकर) कहाँ ? आपके आश्रम में ?

वाल्मीकि—हाँ हाँ, मेरे आश्रम में। क्या तुम्हें संकोच होता है ? दशरथ का मैं मित्र सखा हूँ। श्वसुर के घर जाने में तुम्हें संकोच क्यों होता है ? दशरथ राम के जन्मदाता थे मैं रामायण का जनक हूँ। किसी भी दृष्टि से देखो तो भी मैं तुम्हारा श्वसुर हूँ।

सीता—शम्बूक से भेंट होने के कारण मुझे मेरा श्वसुराल फिर से मिल गया। वह भी मुझसा ही निर्वासित है। मैं भूमि कन्या हूँ वह भी भूमि पुत्र—

वाल्मीकि—और मेरा भी पुत्र ही है। अब यद्यपि मुनि मुझे दस्यु कहते हैं। विश्वामित्र मुनि का व्रत लेने भी पाया अनार्यों का समर्थक बना इसी लिए सारे नाम मुझ का अपमान करने लगे—दस्यु कहने लगे। मुझे बड़ा अभिमान है इस उपाधि का—जिसमें सौभाग्य का दिन है आज ! आज मुझे एक पुत्र और एक कन्या का लाभ हुआ। [इसके बाद जाते समय [illegible] से रामायण का पाठ सुनाई पड़ता है। कुछ श्लोक के अन्तिम श्लोक हैं।] सुनो वत्सभी सुनो। तुम सीता के चरित्र सम्बन्धी हो रहा पाठ सुनो। इस आश्रम में दिन रात यही पाठ होता रहता है। अब भी तुम्हें यह रामायण भूमि पराई लगती है।

सीता—(उन्हें नमस्कार करके) पिता की आज्ञा सिर आँखों पर है !

शम्बूक—आज मैं धन्य हो गया माँ ! (सीता के पैर पकड़कर।) तपस्या पर प्रतिबंध लग जाने से मेरा मन व्याकुल हो रहा था। अब माँ

की सेवा करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा। उस प्रतिज्ञा की अब मुझे तनिक भी चिंता नहीं! मातृ सेवा के सामने तपस्या की क्या बिसात? (वाल्मीकि से) ठीक है न भगवन्?

वाल्मीकि—अक्षरशः सत्य है! मातृ सेवा सी दूसरी तपस्या नहीं! बड़े भाग्यवान हो तुम शम्बूक। और सीता तुम भी बड़ी भाग्यवान हो। प्रसूति वेदना बिना ही तुम्हें यह पुत्र लाभ हुआ है। अब चलो मेरे आश्रम में। फल पुष्प लताओं की भांति ही बाल बच्चों से मेरा यह आश्रम भरा हुआ है। उन सभी पुत्रवती तपस्विनियों से तुम्हारा परिचय करा देता हूँ।

सीता—पिता की आज्ञा स्वीकार कर लेने पर भी मेरा यह मन सशंक हो रहा है। अयोध्या की साम्राज्ञी के भाग्य में यह परवश भाव क्यों?

वाल्मीकि—अब भी नहीं कह रही हो?

सीता—मैं अयोध्या की रानी हूँ। राजा राम द्वारा त्यागे जाने पर भी रानी पद के ज्ञान का विस्मरण मेरे इस अभिमानी हृदय को नहीं होता।

शम्बूक—अयोध्या की रानी भूमि कन्या है।

सीता—इसीलिए इस गर्भावस्था में मेरी इच्छा मिट्टी खाने की हुआ करती थी। मेरी वह मां मुझे याद करा रही थी। मैं उसे भूल गई थी क्या इसीलिए मुझे यह दण्ड मिला भगवन्?

वाल्मीकि—यह भवितव्य बताएगा। तुम्हारा वह दिव्य भवितव्य मुझे दिखाई दे गया है। उस दृश्य से ही रामायण का उत्तरकाण्ड पूरा होगा। इसीलिए तुम यहाँ मेरे आश्रम में आई हो। वह अपना दृश्य—मेरी आँखों के सामने दिखाई पड़ने वाला वह दृश्य—अयोध्या नगरी को रामायण के गान से मोहित करने वाले वे कौन बटुक मुझे दिखाई दे रहे हैं?—सुनो—सुनो सीता रामायण का यह जयघोष सुनो! इस घोष के निनाद से दसों दिशाएँ गूँज उठी। समय मुझे इस वाल्मीकि आश्रम में

रघुवंश के दो मधुर उन दिखाई दे रहे हैं—(उत्तर काण्ड के प्रारम्भ के श्लोक पढ़ने लगता है।)

[अन्दर होने वाला रामायण का गान ज़ोर-ज़ोर से सुनाई पड़ता है। सब लोग मंत्र-मुग्ध से वह गान सुनते रहते हैं।]

(पर्दा)

चौथा अंक

[राम का अंतःपुर। दूर से दो छोटे बालकों की आवाज़ में रामायण के कुछ अंश के अंतिम भाग का गायन सुनाई पड़ रहा है। पर्दा उठते समय यह गायन समाप्त होने जा रहा है। राम और लक्ष्मण यह सुन रहे हैं। राम के बोलना आरम्भ करने से कुछ समय बाद यह गायन बंद होता है।]

राम—सुन लिया लक्ष्मण इस गायन को सुनकर इस राम के हृदय में भी हाहाकार मच गया है। आज बारह वर्ष से अंतरतम की विरह वेदना को दबा रखने का प्रयत्न कर रहा था अश्वमेध के पुण्याहवाचन का प्रसंग उठा और राख के नीचे दबी हुई चिंगारी फिर से सतेज हो उठी। इन बालकों के गायन ने फूंक मार-मार कर मेरे भीतर उस चिंगारी से ज्वाला भड़का दी है। हृदय को झुलस रही है वह ज्वाला।

लक्ष्मण—मैं उसकी कल्पना कर रहा हूँ।

राम—नहीं लक्ष्मण, उसकी पूरी कल्पना मेरे सिवाय और कोई भी नहीं कर सकता। इस अश्वमेध में राम-पत्नी का अभाव मुझे सतत-सम खटक रहा है। अंतःकरण में बराबर हाहाकार मचा हुआ है। रामायण के इस गायन से वह सारा पूर्व इतिहास पुनः दृष्टि के समक्ष आ रहा है और उसका सिंहावलोकन करते समय लगता है कि कहीं से सब भूलें तो नहीं हुई हैं मुझसे?

लक्ष्मण—ऐसा न कहिए। आपके मुँह से निकले हुए ये पश्चात्ताप के उद्गार मेरे हृदय पर वज्रप्रहार कर रहे हैं। क्या मैं अपराधी नहीं हूँ? मेरा हृदय भी ऐसा ही झुलस रहा है राम—

राम—तुम्हारे अपराध का कारण भी मैं ही हूँ लक्ष्मण! लोकाराधना

के लिए मैं निर्दय बना। आज्ञापालन के लिए मुझसे अपराध हुए। इसका निराकरण कैसे होगा?

लक्ष्मण—आपने उन बालकों को देखा है?

राम—यह क्यों पूछते हो?

लक्ष्मण—बाल्यकाल की स्मृतियाँ जाग उठीं उन बालकों को देख कर। कुछ साम्य दिखाई पड़ा। उनका गायन सुनने के बजाए मैं उनकी ओर देखता ही रहा।

राम—किससे साम्य दिखाई दिया तुम्हें?

लक्ष्मण—इसका अनुभव आपने नहीं किया? (राम चुप रहते हैं) दोनों जुड़वा भाई हैं, मानों एक ही साँचे में ढले हुए दो चित्र हों। यदि ऋषि कुमारों के वेष में न होते तो मैं उन्हें राजकुमार ही कहता। (रुककर) यहाँ बुला लाऊँ उन्हें?

राम—नहीं। मैंने उन्हें जी भर कर देख लिया है। (क्षण भर चुप रहते हैं और आँखें बन्द करके सोचते हैं) उनका गायन लोग बार बार सुन रहे हैं। मुग्ध हो रहे हैं। इस अवसर की कुशलता की भी किसी को चिन्ता नहीं। तुम ऐसा करो उन बालकों को अठारह सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार में दे दो। और इस काव्य की रचना किसने की है यह भी उनसे पूछते आओ—

[फिर चुप हो जाता है]

लक्ष्मण—और उनका ठौर-ठिकाना भी पूछता आऊँ?

राम—पूछ कर क्या करना है? नहीं यह न पूछो केवल इतना ही पूछो कि—

[राजगुरु शम्बूक के साथ प्रवेश करते हैं]

लक्ष्मण—क्षण भर विश्राम पाना भी असंभव हो गया है राम को!

[राम उठ कर नमस्कार करते हैं और राजगुरु को आसन पर बैठाते हैं लक्ष्मण जाते हैं।]

राजगुरु—बैठो राजन्। (शम्बूक की ओर अंगुली उठाकर) इसे

पहचानते हो ? (राम उसकी ओर देखते भर रहते हैं) यह वही दस्यु है। बारह वर्ष पूर्व अधर्माचरण के अपराध से जिसे आपने निर्वासित किया था वही है यह दस्यु।

राम—(स्वगत) बारह वर्ष पूर्व !

राजगुरु—यह फिर से अधर्माचरण करने लगा है। जानते हो यह यहाँ कैसे आया है ? अश्वमेध के लिए आए हुए ऋषि-मुनियों की टोलियों में घुस कर चला है यह दस्यु अयोध्या में—राजवचन का उल्लंघन करके आया है। क्यों रे चाण्डाल ठीक है न ?

शम्बूक—हाँ भगवन्।

राजगुरु—खुल्लमखुल्ला हाँ कहता है! लाज नहीं आती ?

शम्बूक—यह रामराज्य है। प्रत्यक्ष राजाराम के सामने कैसे झूठ बोलूँ। सच बोलने में क्या लाज !

राजगुरु—तूने राज-आज्ञा का उल्लंघन किया है—

शम्बूक—हाँ भगवन्—

राजगुरु—यह अपराध तूने क्यों किया ?

शम्बूक—गत बारह वर्षों से मैं वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रह रहा हूँ—

राम—(चौंककर) वाल्मीकि मुनि के आश्रम में ?

शम्बूक—हाँ राजन्! वे मुझ जैसे दस्युओं के रक्षक हैं।

राजगुरु—इसीलिए तो सारे लोग उन्हें दस्यु कहते हैं!

शम्बूक—मैं उन्हीं के परिवार में रहता हूँ। अश्वमेध के लिए वे सपरिवार यहाँ आए हैं, मैं भी उस परिवार में चला आया। वही मुझे यहाँ लाए हैं।

राजगुरु—वे लाए अवश्य पर तू यहाँ क्यों आया ? ब्रह्मकुल के परिवार में क्यों आया ? इसका परिणाम क्या होगा यह भी जानता है तू ?

शम्बूक—जानता हूँ!

राम—इस अपराध के लिए दण्ड है शिरच्छेद—

शम्बूक—हाँ राजन् !

राजगुरु—अब की बार तुझे क्षमा नहीं मिलेगी। जानता है तेरे इस अधर्माचरण का क्या परिणाम हुआ है? एक ब्राह्मण का लड़का असमय मर गया?

राम—ब्राह्मण का लड़का असमय मर गया?

राजगुरु—हाँ राजन्। लड़के का शव लिए वह ब्राह्मण राजद्वार पर बैठा है। यह अकल्पित उत्पात हुआ इसीलिए तो पूछताछ करता मैं इसे यहाँ ले आया। अब बोल चाण्डाल क्या कहता है?

शम्बूक—जो दण्ड मिले मैं भोगने के लिए प्रस्तुत हूँ।

राम—शिरच्छेद?

शम्बूक—हाँ राजन्। जी कर भी क्या करूँगा? अंतरतम की इच्छा जब पूरी होती ही नहीं तो किस लिए जीऊँ?

राजगुरु—ये बारह साल कैसे जीवित रहा?

शम्बूक—इन बारह वर्षों में मुझे तपस्या से भी एक बड़ी साधना करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। मुझे एक लता मिल गई थी उसी की सेवा करता रहा।

राजगुरु—सेवा करना ही तेरा कर्तव्य है।

शम्बूक—साधारण सेवा से यह कर्तव्य अधिक ऊँचा था भगवन्। वाल्मीकि ऋषि ने मुझे बताया कि मेरे उस कर्तव्य का अंत आज होगा इसीलिए आज मैंने फिर से तपस्या आरम्भ कर दी।

राजगुरु—और इसीलिए आज एक ब्राह्मण की अकाल मृत्यु का संकट अयोध्या पर आ पड़ा। तेरा शिरच्छेद होना ही चाहिए।

शम्बूक—प्रभु राम के हाथों मृत्यु हुई तो अपनी तपस्या का फल पाया समझूँगा। मोक्ष के लिए ही तो तपस्या की जाती है। यही मोक्ष इस प्रकार मिल जाय तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा।

राम—अरे कौन है बाहर! (विजय आता है) विजय इस दस्यु को मैंने शिरच्छेद का दण्ड दिया है। इसे सेनापति के पास ले जाओ।

विजय—चलो शम्बूक ।

[शम्बूक राम के पैरों पर मस्तक रखता है तथा राम उसके मस्तक पर हाथ फेरते हैं ।]

राम—शूद्रकुलोत्पन्न तपोनिधे तुम्हें मोक्ष लाभ हो ।

शम्बूक—आज मैं धन्य हूँ ।

[शम्बूक एकदम चला जाता है उसके पीछे-पीछे विजय जाता है ।]

राजगुरु—राजाराम वर्णाश्रम की प्रतिष्ठा के लिए यह कठोर दण्ड देते समय तुम्हें दुःख हुआ होगा यह मैं जानता हूँ। पर इसी दण्ड से ब्राह्मण पुत्र जीवित होते ही सारी अयोध्या तुम्हारा जयजयकार कर उठेगी । ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे, (जाता है ।)

[राम परेशान से होकर कुछ देर टहलते रहते हैं, तभी सुमंत प्रवेश करता है ।]

सुमंत—(राम को नमस्कार करके) प्रभु के विश्रांतिकाल में आकर बाधा उपस्थित करने के लिए क्षमा हो । कृपापूर्ण अंतःकरण से प्रभु ने इस अश्वमेध समारोह में भाग लेने का मुझे अवसर दिया । पर एक चमत्कार देखकर लगा कि यह प्रभु ने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया ।

राम—कैसा चमत्कार ?

सुमंत—बारह वर्ष पहले की स्मृति—प्रभु के बाल्यकाल की एक स्मृति (गद्गद होकर)—प्रभु दर्पण के सामने खड़े थे । दशरथराज और कौशल्या माता कौतुक से देख रहे थे । दर्पण में अपना प्रतिबिंब देख कर प्रभु स्वयं अपने से ही बोलने लगे थे । यह देखकर राजा दशरथ ने कहा था 'देखो सुमंत ये दो रामचन्द्र देखो'—उसकी याद आ गई मुझे—(रुकता है ।)

राम—उसकी क्यों याद आई ?

सुमंत—आज यज्ञमंडप में रामायण का गान करने वाले वे दो बटुक देखे मानो दो रामचन्द्र हों ! वही स्वरूप वैसे ही हँसमुख वही मधुर आवाज वही डील-डौल कमी थी तो केवल दर्पण की बुढ़ापे के कारण

इन बूढ़ी आँखों में पुनः ज्योति आ गई। क्षणभर के लिए बुढ़ापा भूल गया। लगा कहीं रामायण का बालकाण्ड तो फिर से आरम्भ नहीं हुआ? (क्षणभर रुक कर परेशान राम की ओर देखकर) क्या प्रभु ने इसी बात का अनुभव नहीं किया?

राम—मैं ऐसा अनुभव क्यों करूं?

सुमंत—क्षणभर मुझे लगा कि मेरी बोली भावना को धोखा हुआ है। यज्ञमंडप में रक्खी हुई सीता देवी की प्रतिमा की ओर मेरी दृष्टि बार-बार जा रही थी। उन्हीं बालकों के आसपास कहीं सीता देवी भी दिखाई पड़ेंगी इस आशा से मैंने चारों ओर देखा—पर कोई भी दिखाई न पड़ा। प्रतिमा की ओर दृष्टि जाते ही मेरा हृदय भर आया। यज्ञ का इतना बड़ा समारोह—मैं यह ख्याल जानता था—प्रभु कहते तो मैं जाकर उन्हें ले आता—

राम—मैं एक वचनी राम हूँ। प्रसंगानुसार नहीं बदलता इस राम का व्रत।

सुमंत—उस प्रतिमा की ओर देख रहा था। रघुवंश में कई पीढ़ियों से न होने वाला यह अश्वमेध आरम्भ हुआ—श्री राम के हाथों आरम्भ हुआ पर उनके समीप केवल यह सोने की प्रतिमा!—सोने की पत्नी रहते हुए यह प्रतिमा क्यों बनवाई प्रभु?

राम—बिना पत्नी के अग्नि का आवाहन नहीं होता सुमंत!

सुमंत—तो फिर पत्नी ही ले आते—दूसरी!

राम—यह संभव नहीं।

सुमंत—क्यों संभव नहीं? रघुवंश के सभी राजाओं ने अनेक विवाह किए थे। आज भी तो तीन राजमाताएँ विद्यमान हैं?

राम—इसीलिए मुझे दुबारा विवाह नहीं करना है। तुम कैसे पूछते हो सुमंत—इस प्रसंग को उच्चारना भी कठिन हो रहा है—बताओ सुमंत इस राम को वनवास क्यों मिला था? क्या सौतेली भावना ही इसका कारण न बनी थी? फिर उन बातों को मैंने भोगा

है उन्हीं के कारण मैंने मन में निश्चय कर लिया—एकपत्नी व्रत ही मेरा धर्म है। मैं स्वयं उसका पालन करूँगा और प्रजा से भी पालन करवाऊँगा। जिन कष्टों को मैंने भोगा है वे कष्ट मेरी प्रजा न भोग पाए। इसीलिए सीता की प्रतिमा—सीता के वैभव को शोभा देने वाली सुवर्ण प्रतिमा मुझे रचनी पड़ी।

सुमंत—सौतीलेपन का डर किसे हो ? संतान हो तभी न ?—नहीं ! नहीं ! यह मैं क्या कह रहा हूँ ? रामायण का गायन मैंने अभी अभी तो सुना है। कितना मधुर था वह गान ? वैसी आवाज वैसा ही स्वरूप। सारे श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए थे। सभी पागल हो उठे थे उस गायन से। मैं तो अपने आप को भी भूल गया था। गायकों को पहचानने के लिए जब मैं ध्यानपूर्वक देखने लगा तो मेरी आँखों में नई ज्योति आ गई। हृदय भर आया। वे कौन और कहाँ के रहने वाले हैं यह पूछना भी भूल गया और दौड़ता हुआ यहाँ आ पहुँचा।

राम—किसने लिखा है यह काव्य ?

सुमंत—मैं यह नहीं जानता !—पर उन कुमारों को तो प्रभु ने देखा है ! (राम चुप रहते हैं।) देखे हैं न वे कुमार ? क्या आपको वे रघुवंश के अंकुर नहीं जान पड़ते ?

राम—यह तुम्हारे बुढ़ापे की दृष्टि का भ्रम था सुमंत !

सुमंत—नहीं प्रभु ! विश्वामित्र मुनी आए थे यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण को लिवा जाने उस समय उनका भी ऐसा ही बटुक वेश किया गया था। ठीक वही मूर्ति मेरी आँखों के सामने खड़ी हो गई है। नहीं प्रभु नहीं बारह वर्ष के ये कुमार—

उर्मिला—(प्रवेश करके) सीता की संतान हैं यही न आपका कहना है सुमंत जी ?—

सुमंत—सुन लीजिए प्रभु। यह तो बुढ़ापे की दृष्टि नहीं है !

उर्मिला—अपने उस विवाह काल की याद आ गई। जिस ऋषि-

लक्ष्मण गये थे ? पर यहाँ तो कोई राक्षस विघ्न उपस्थित करने के लिये नहीं आये हैं ।

राम—राक्षसों के बिना ही यहाँ विघ्न उत्पन्न हो रहे हैं । (लक्ष्मण से) उन्हें पुरस्कार दे दिया ?

लक्ष्मण—उन्होंने पुरस्कार अस्वीकार कर दिया ।

राम—अस्वीकार क्यों किया ? कम था ?

लक्ष्मण—नहीं । उन्होंने कहा कन्द-मूल खाकर रहने वाले हम ऋषि-कुमार तपोवन में द्रव्य का क्या करेंगे ?

उर्मिला—सुन लीजिये !

राम—यह काव्य किसने रचा है ? किसने सिखाया है उन्हें ?

लक्ष्मण—काव्य की रचना वाल्मीकि मुनि ने की है । यज्ञ समारोह में वे भी आये हुये हैं ।

राम—फिर उन्हीं को क्यों न बुला लाएं ?

लक्ष्मण—वे स्वयं ही इधर आ रहे हैं ।

उर्मिला—वाल्मीकि मुनि यहाँ आ रहे हैं ? अब पता लगेगा यह पहेली अब हल होगी ।

राम—वाल्मीकि मुनि यहाँ आ रहे हैं ? बड़ा भाग्यशाली हूँ मैं । वन वनवास में कई ऋषि-मुनियों से भेंट हुई थी पर उन्हीं से भेंट न हो सकी थी । उनका यथायोग्य स्वागत होना चाहिए लक्ष्मण । उनको यहाँ आने का आमंत्रण दिया है ?

लक्ष्मण—मैंने आमंत्रण नहीं दिया । वे स्वयं ही आने वाले हैं ।

उर्मिला—उन कुमारों को लेकर ?

लक्ष्मण—नहीं बड़े तेजस्वी हैं वे कुमार । उन्होंने कहा था कि स्वयं राजा राम ने बुलाए बिना वे नहीं आयेंगे ।

सुमन्त—बारह वर्ष के छोटे से बालक ! कितना स्वाभिमान ! अब भी आपको संदेह है प्रभो ?

उर्मिला—अभी हुआ जाता है उस संदेह का निराकरण मेरी बात सच है यह आप सभी को मानना पड़ेगा।

[वाल्मीकि प्रवेश करते हैं। सब उन्हें नमस्कार करते हैं।]

राम—इस आसन पर विराजमान होइए भगवन्। कई दिनों की मेरी इच्छा आज पूरी हुई। इस रामराज्य को आपके चरणों का स्पर्श हुआ आज मैं धन्य हुआ!

वाल्मीकि—चिरंजीव हो राम! आज मैं भी धन्य हुआ। जिस पुराण पुरुष का चरित्र मेरी दिव्य दृष्टि को दिखाई पड़ा था जिस चरित्र की रचना के लिए मुझे नया छन्द बनाने की स्फूर्ति मिली जिस चरित्र को लिखने से तपस्या की तृप्ति इस वाल्मीकि को प्राप्त हुई वह चरित्र आज उसी से सुन लिया। मेरा जीवन सार्थक हुआ!

राम—तपोवन का आपका नित्य क्रम तो ठीक चल रहा है न? सब निर्विघ्न है न वहाँ?

वाल्मीकि—मेरी भी कोई तपस्या है? यथार्थ वस्तुओं के सुधार में विचरता रहता हूँ। उन वस्तुओं की उन्नति करना ही मेरा ध्येय है। उसी ध्येय के लिए संघर्ष कर रहा हूँ। कब होगी वह ध्येय पूर्ति?

राम—मुनिवर्य ने मुझे निरुत्तर कर दिया है। आपकी इस तपस्या का विघ्न दूर करना इस राम के लिए भी असम्भव हो गया है।

वाल्मीकि—यह मैं जानता हूँ।

राम—क्या बताऊँ मुनिराज यह लोकाराधना भी एक बड़ी घोर तपस्या है। इस तपस्या के लिए मन मारना पड़ता है। कभी भी निर्विघ्न नहीं होती यह तपस्या! इस लोक सेवा-की तपस्या का वैभव ही विघ्न है!

वाल्मीकि—ऐसा क्यों कहते हो राजन्?

राम—आप सर्वज्ञ हैं, मैं क्या कहूँ? पश्चाताप से मेरा मन जला जा रहा है। इस तपस्या के कारण अपराध होते जा रहे हैं। उन अपराधों की जानकारी इस हृदय में ज्वालामुखी की भाँति सुलग रही है। अन्तरतम से निरन्तर पुकार उठती रहती है राम, यह अन्याय हो रहा

लक्ष्मण गये थे ? पर यहाँ तो कोई राक्षस विघ्न उपस्थित करने के लिये नहीं आये हैं ।

राम—राक्षसों के बिना ही यहाँ विघ्न उत्पन्न हो रहे हैं। (लक्ष्मण से) इन्हें पुरस्कार दे दिया ?

लक्ष्मण—उन्होंने पुरस्कार अस्वीकार कर दिया ।

राम—अस्वीकार क्यों किया ? कम था ?

लक्ष्मण—नहीं। उन्होंने कहा कन्द-मूल खाकर रहने वाले हम ऋषि-कुमार तपोवन में द्रव्य का क्या करेंगे ?

उर्मिला—सुन लीजिये !

राम—यह काव्य किसने रचा है ? किसने सिखाया है इन्हें ?

लक्ष्मण—काव्य की रचना वाल्मीकि मुनि ने की है। इस समारोह में वे भी आये हुये हैं।

राम—फिर उन्हीं को क्यों न बुला लाएं ?

लक्ष्मण—वे स्वयं ही इधर आ रहे हैं।

उर्मिला—वाल्मीकि मुनि यहाँ आ रहे हैं ? अब पता लगेगा यह पहेली कब हल होगी।

राम—वाल्मीकि मुनि यहाँ आ रहे हैं ! बड़ा भाग्यशाली हूँ मैं। उस वनवास में कई ऋषि-मुनियों से भेंट हुई थी पर उन्हीं से भेंट न हो सकी थी। उनका यथायोग्य स्वागत होना चाहिए लक्ष्मण। उनको यहाँ आने का आमंत्रण दिया है ?

लक्ष्मण—मैंने आमंत्रण नहीं दिया। वे स्वयं ही आने वाले हैं।

उर्मिला—उन कुमारों को लेकर ?

लक्ष्मण—नहीं बड़े तेजस्वी हैं वे कुमार। उन्होंने कहा था कि स्वयं राजा राम के बुलाए बिना वे नहीं आयेंगे।

सुमन्त—बारह वर्ष के छोटे से बालक ! कितना स्वाभिमान ! अब भी आपको संदेह है प्रभो ?

तत्पर क्यों थे ? पर यहाँ तो कोई राक्षस विघ्न उपस्थित करने के लिये नहीं आये हैं।

राम—राक्षसों के बिना ही यहाँ विघ्न उत्पन्न हो रहे हैं। (लक्ष्मण से) उन्हें पुरस्कार दे दिया ?

लक्ष्मण—उन्होंने पुरस्कार अस्वीकार कर दिया।

राम—अस्वीकार क्यों किया ? कम था ?

लक्ष्मण—नहीं। उन्होंने कहा कन्द-मूल खाकर रहने वाले हम ऋषि-कुमार तपोवन में धन का क्या करेंगे ?

उर्मिला—सुन लीजिये !

राम—यह काव्य किसने रचा है ? किसने सिखाया है उन्हें ?

लक्ष्मण—काव्य की रचना वाल्मीकि मुनि ने की है। यज्ञ समारोह में वे भी आये हुये हैं।

राम—फिर उन्हीं को क्यों न बुला लाएँ ?

लक्ष्मण—वे स्वयं ही इधर आ रहे हैं।

उर्मिला—वाल्मीकि मुनि यहाँ आ रहे हैं ? अब पता लगेगा यह पहेली अब हल होगी।

राम—वाल्मीकि मुनि यहाँ आ रहे हैं ? बड़ा भाग्यशाली हूँ मैं। वन वनवास में कई ऋषि-मुनियों से भेंट हुई थी पर उन्हीं से भेंट न हो सकी थी। उनका यथायोग्य स्वागत होना चाहिए लक्ष्मण। उनको यहाँ आने का आमंत्रण दिया है ?

लक्ष्मण—मैंने आमंत्रण नहीं दिया। वे स्वयं ही आने वाले हैं।

उर्मिला—उन कुमारों को लेकर ?

लक्ष्मण—नहीं बड़े तेजस्वी हैं वे कुमार। उन्होंने कहा था कि स्वयं राजा राम भी बुलाए बिना वे नहीं आयेंगे।

सुमन्त—बारह वर्ष के छोटे से बालक ! कितना स्वाभिमान ! अब भी आपको सन्देह है प्रभो ?

ऊर्मिला—अभी हुआ जाता है उस सन्देह का निराकरण मेरी बात सच है अब आप सभी को मानना पड़ेगा।

[वाल्मीकि प्रवेश करते हैं। सब उन्हें नमस्कार करते हैं।]

राम—इस आसन पर विराजमान होइए भगवन्। कई दिनों की मेरी इच्छा आज पूरी हुई। इस रामराज्य को आपके चरणों का स्पर्श हुआ आज मैं धन्य हुआ!

वाल्मीकि—चिरंजीव हो राम! आज मैं भी धन्य हुआ। जिस पुराण पुरुष का चरित्र मेरी दिव्य दृष्टि को दिखाई पड़ा था जिस चरित्र की रचना के लिए मुझे नया छन्द बनाने की स्फूर्ति मिली जिस चरित्र को लिखने से तपस्या की तृप्ति इस वाल्मीकि को प्राप्त हुई वह चरित्र आज उसी ने सुन लिया। मेरा जीवन सार्थक हुआ!

राम—तपोवन का आपका नित्य क्रम तो ठीक चल रहा है न? सब निर्विघ्न है न वहाँ?

वाल्मीकि—मेरी भी कोई तपस्या है? यथार्थ वस्तुओं के समाज में विचरता रहता हूँ। उन वस्तुओं की उत्पत्ति करना ही मेरा ध्येय है। उसी ध्येय के लिए संघर्ष कर रहा हूँ। कब होगी वह ध्येय पूर्ति?

राम—मुनिवर्य ने मुझे निरुत्तर कर दिया है। आपकी इस तपस्या का विघ्न दूर करना इस राम के लिए भी असम्भव हो गया है।

वाल्मीकि—यह मैं जानता हूँ।

राम—क्या बताऊँ मुनिराज यह लोकाराधना भी एक बड़ी घोर तपस्या है। इस तपस्या के लिए मन मारना पड़ता है। कभी भी निर्विघ्न नहीं होती यह तपस्या! इस लोक सेवा-की तपस्या का वैभव ही विघ्न है!

वाल्मीकि—ऐसा क्यों कहते हो राजन्?

राम—आप सर्वज्ञ हैं, मैं क्या कहूँ? पश्चाताप से मेरा मन जला जा रहा है। इस तपस्या के कारण अपराध होते जा रहे हैं। उन अपराधों की जानकारी इस हृदय में ज्वालामुखी की भाँति सुलग रही है। अन्तरतम से निरन्तर पुकार उठती रहती है राम, यह अन्याय हो रहा

है ।—राम यह अन्याय हो रहा है । फिर भी मुझ से अपराध पर अपराध होते चले जा रहे हैं।

वाल्मीकि—इसी में तुम्हारी महत्ता है राजन् । (राम नमस्कार करते हैं ।) तीनों लोकों में अखण्ड कीर्ति पाने वाले तुम सत्य प्रतिज्ञ हो पर भावुक तुमने अपने ऊपर बोझ लाद लिया । मुझे तुम पर क्रोध आया था पर आज तुम्हारी ये बातें सुनकर मेरा क्रोध शान्त हो गया । रामायण की रचना करके मैंने तुम्हें चीरंजीव कर दिया है । उस रचना का उत्तर भाग अब मैं पूरा कर सकूंगा ।

उर्मिला—(सामने आकर हाथ जोड़ते हुए) एक बात पूछ सकती हूँ भगवन् ?

वाल्मीकि—जनक की उर्मिला हो न तुम ?

उर्मिला—मेरी याद है भगवन् ? मैं समझी थी कि आप मुझे भूल गए होंगे ।

वाल्मीकि—ऐसा क्यों ।

उर्मिला—आप भी श्रीरामचन्द्र की भांति ही निर्दय हैं । रामायण लिखते समय मेरे जीवन की भावनाएँ आप नहीं भांप पाए ? उन बटुकों के मुख से मैंने सारी रामायण सुनी— उसमें सब की बात थी पर मेरा ही विस्मरण आपको रामायण लिखते समय क्यों हुआ ?

वाल्मीकि—तेजस्वी नारी तुम्हारे निस्सीम त्याग से मैं इतना चका चौंध हो गया कि तुम्हारे उस त्याग का वर्णन करना मेरी शक्ति से परे हो गया । मुझे क्षमा करो बेटी ।

उर्मिला—अपनी मर्यादा से बाहर जाने के लिए आप ही मुझे क्षमा करें । (नमस्कार करके राम की ओर मुड़ती है) अब पूछ लीजिए न इनसे ?

राम—क्या पूछूं ?

उर्मिला—मेरी बहन का कुशल समाचार ।

वाल्मीकि—जिसके भाग्य में अखण्ड वनवास लिखा है उसका कुशल

क्षेम मानी सुखी वनवास ! उसका यह पितृ बंधु जीवित रहते हुए वह सकुशल क्यों न होगी ?

उर्मिला—वह कहाँ रहती है ?

वाल्मीकि—अपने ससुराल में। इस वाल्मीकि के तपोवन में। यहीं राम होने वाले रामायण का पाठ सुनती—सौतेली माँ ने नहीं वरन् स्वयं पति ने दिया हुआ वनवास का दण्ड भोगती—वह तपस्वी सीता इसी वाल्मीकि के आश्रम में थी।

सुमन्त—और ये दोनों कुमार ? रामायण के गायक ?

वाल्मीकि—ये रघुवंश के अंकुर हैं। इस वाल्मीकि के ये दोनों शिष्य सीताराम की ही संतान हैं।

उर्मिला—कहाँ है मेरी बहन ?

वाल्मीकि—जहाँ राम हैं वहीं सीता भी है।

सुमन्त—कहाँ है सीता देवी ?

लक्ष्मण—कहाँ है सीता देवी ?

राम—(स्वगत) कहाँ है सीता ! मेरी अर्धांगिनी ! मेरी शक्ति ! मेरा सर्वस्व !

वाल्मीकि—है न ?—तो फिर वह कैसे बिछुड़ सकती है ? राम के हृदय की पुकार वह सुन ले तो दौड़ती हुई आ जायगी यहाँ।

उर्मिला—क्या अभी भी उसने वह पुकार नहीं सुनी है ?

वाल्मीकि—राम के हृदय की पुकार अब तक निःशब्द थी आज वह शब्दों में मुखरित हुई है। उसका परिणाम हुए बिना नहीं रहेगा।

[तपस्विनी के वेश में सीता धीमे कदमों से प्रवेश करती है। सब की नजर उसकी ओर जाती है। राम के अतिरिक्त अन्य सभी 'सीता देवी' कहकर मुँह ही मुँह बड़बड़ाते हैं। सीता बीचोंबीच आकर खड़ी हो जाती है तभी उर्मिला उसके पास जाती है। हाथ से इशारा करके वह उसे दूर रहने के लिए कहती है।]

है !—राम यह अन्याय हो रहा है ! फिर भी मुझ से अपराध पर अपराध होते चले आ रहे हैं।

वाल्मीकि—यही में तुम्हारी महत्ता है राजन् । (राम नमस्कार करते हैं ।) तीनों लोकों में अखण्ड कीर्ति पाने वाले तुम सत्य प्रतिज्ञ हो पर नाहक तुमने अपने ऊपर लांछन लगा लिया ! मुझे तुम पर क्रोध आया था पर आज तुम्हारी ये बातें सुनकर मेरा क्रोध शान्त हो गया । रामायण की रचना करके मैंने तुम्हें चिरंजीव कर दिया है । उस रचना का उत्तर भाग अब मैं पूरा कर सकूंगा ।

उर्मिला—(सामने आकर हाथ जोड़ते हुए) एक बात पूछ सकती हूँ भगवन् ?

वाल्मीकि—लक्ष्मण की उर्मिला हो न तुम ?

उर्मिला—मेरी याद है भगवन् ? मैं समझती थी कि आप मुझे भूल गए होंगे ।

वाल्मीकि—ऐसा क्यों ?

उर्मिला—आप भी श्रीरामचन्द्र की भांति ही निर्मम हैं । रामायण लिखते समय मेरे जीवन की व्यथाएँ याद नहीं आए ? उन बटुकों के मुख से मैंने सारी रामायण सुनी— उसको सब की याद थी पर मेरा ही विस्मरण आपको रामायण लिखते समय क्यों हुआ ?

वाल्मीकि—तेजस्वी नारी तुम्हारे निस्सीम त्याग से मैं इतना चका चौंध हो गया कि तुम्हारे उस त्याग का वर्णन करना मेरी शक्ति से परे हो गया । मुझे क्षमा करो बेटी ।

उर्मिला—अपनी मर्यादा से बाहर जाने के लिए आप ही मुझे क्षमा करें । (नमस्कार करके राम की ओर मुड़ती है) अब पूछ लीजिए न [illegible] ?

राम—क्या पूछूँ ?

उर्मिला—मेरी बहन का कुशल समाचार !

वाल्मीकि—जिसके भाग्य में दारुण वनवास लिखा है उसका कुशल

प्रेम पाती सुखी वनवास। उसका यह शिशु अंकुर अंकित प्राप्त हुए वह सम्पूर्ण क्यों न होगी ?

उर्मिला—वह कहाँ रहती है ?

वाल्मीकि—अपने ससुराल में। इस वाल्मीकि आश्रम में। महाराज होने वाले रामायण का पाठ सुनते—सीताजी भी थे यहीं, वरन् स्वयं पति ने दिया हुआ वनवास का दण्ड भोगती—वह अभागी सीता इसी वाल्मीकि के आश्रम में थी।

सुमन्त—और ये दोनों कुमार ? रामायण के गायक ?

वाल्मीकि—ये रघुवंश के अंकुर हैं। इस वाल्मीकि के ये शिष्य सीताराम की ही संतान हैं।

उर्मिला—कहाँ है मेरी बहन ?

वाल्मीकि—जहाँ राम हैं वहीं सीता भी है।

सुमन्त—कहाँ है सीता देवी ?

लक्ष्मण—कहाँ है सीता देवी ?

राम—(स्वगत) कहाँ है सीता ! मेरी सहभागिनी ! धर्म-संगिनी ! मेरा सर्वस्व !

वाल्मीकि—है न ?—तो फिर वह कैसे छिप सकती है ? राम के हृदय की पुकार वह सुन ले तो दौड़ती हुई आ जाती यहाँ।

उर्मिला—क्या अभी भी उसने वह पुकार नहीं सुनी है ?

वाल्मीकि—राम के हृदय की पुकार पर सब विश्व की भाव यह शब्दों में मुखरित हुई है। उसका परिणाम बिना नहीं रहता।

[तपस्विनी के वेश में सीता धीमे कदमों से प्रवेश करती है। जब भी नज़र उसकी ओर जाती है। राम के अनिश्चित भाव सभी 'सीता देवी' कहकर मुँह ही मुँह बड़बड़ाते हैं। सीता वाल्मीकि के पास खड़ी हो जाती है तभी उर्मिला उसके पास जाती है। हाथ से इशारा करके वह उसे दूर रहने के लिए कहती है।]

है !—राम यह अन्याय हो रहा है ! फिर भी मुझ से अपराध पर अप-राध होते चले जा रहे हैं।

वाल्मीकि—इसी में तुम्हारी महत्ता है राजन् । (राम नमस्कार करते हैं ।) तीनों लोकों में अखण्ड कीर्ति पाने वाले तुम परम प्रसिद्ध हो पर नाहक तुमने अपने ऊपर लांछन लगा लिया । मुझे तुम पर क्रोध आया था पर आज तुम्हारी ये बातें सुनकर मेरा क्रोध शान्त हो गया । रामायण की रचना करके मैंने तुम्हें चीरंजीव कर दिया है । उस रचना का उत्तर भाग अब मैं पूरा कर सकूंगा ।

उर्मिला—(सामने आकर हाथ जोड़ते हुए) एक बात पूछ सकती हूँ भगवन् ?

वाल्मीकि—लक्ष्मण की उर्मिला हो न तुम ?

उर्मिला—मेरी याद है भगवन् ? मैं समझी थी कि आप मुझे भूल गए होंगे ।

वाल्मीकि—ऐसा क्यों ?

उर्मिला—आप भी श्रीरामचन्द्र की भांति ही निर्दय हैं । रामायण लिखते समय मेरे जीवन की भावनाएँ आप नहीं जान पाए ? उन बटुकों के मुख से मैंने सारी रामायण सुनी— सबको तब की याद थी पर मेरा ही विस्मरण आपको रामायण लिखते समय क्यों हुआ ?

वाल्मीकि—तेजस्वी नारी तुम्हारे निस्सीम त्याग से मैं इतना चका-चौंध हो गया कि तुम्हारे उस त्याग का वर्णन करना मेरी शक्ति से परे हो गया । मुझे क्षमा करो बेटी ।

उर्मिला—अपनी मर्यादा से बाहर जाने के लिए आप ही मुझे क्षमा करें । (नमस्कार करके राम की ओर मुड़ती है) अब पूछ लीजिए न इनसे ?

राम—क्या पूछूँ ?

उर्मिला—मेरी बहन का कुशल समाचार ।

वाल्मीकि—जिसके भाग्य में अखण्ड वनवास लिखा है उसका कुशल

नेम यामी दुखी वनवास ! उसका यह पितृ बन्धु जीवित रहते हुए यह सकुशल क्यों न होगी ?

ऊर्मिला—वह कहाँ रहती है ?

वाल्मीकि—अपने ससुराल में। इस वाल्मीकि के तपोवन में। यहीं राम होने वाले 'रामायण' का पाठ सुनतीं—सौतेली माँ न नहीं वरन् स्वयं पति से दिया हुआ वनवास का दण्ड भोगती—वह तपस्वी सीता इसी वाल्मीकि के आश्रम में थी।

सुमन्त—और ये दोनों कुमार ? रामायण के गायक ?

वाल्मीकि—वे रघुवंश के अंकुर हैं। इस वाल्मीकि के वे दोनों शिष्य सीताराम की ही संतान हैं।

ऊर्मिला—कहाँ है मेरी बहन ?

वाल्मीकि—जहाँ राम हैं वहीं सीता भी है।

सुमन्त—कहाँ हैं सीता देवी ?

लक्ष्मण—कहाँ हैं सीता देवी ?

राम—(स्वगत) कहाँ है सीता ! मेरी धर्मचारिणी ! मेरी शक्ति ! मेरा सर्वस्व !

वाल्मीकि—है न ?—तो फिर वह कैसे बिछुड़ सकती है ? राम के हृदय की पुकार वह सुन ले तो दौड़ती हुई आ जायगी यहाँ।

ऊर्मिला—क्या अभी भी उसने वह पुकार नहीं सुनी है ?

वाल्मीकि—राम के हृदय की पुकार अब तक निःशब्द थी। आज वह शब्दों में मुखरित हुई है। उसका परिणाम हुए बिना नहीं रहेगा।

[तपस्विनी के वेश में सीता धीमे कदमों से प्रवेश करती है। सब की नजर उसकी ओर जाती है। राम के अतिरिक्त अन्य सभी 'सीता देवी' कहकर मुँह ही मुँह बड़बड़ाते हैं। सीता बीचोंबीच आकर खड़ी हो जाती है तभी ऊर्मिला उसके पास जाती है। हाथ से इशारा करके वह उसे दूर रहने के लिए कहती है।]

वाल्मीकि—वैसे भी राम तुमने अपनी सीता ? मेरी आज्ञा से यहाँ आई है।

राम—सीता निर्वासित है।

सीता—जी हाँ। यह बात किसी ने मुझसे कही थी राजाज्ञा मैंने राजा के मुँह से नहीं सुनी थी।

राम—फिर भी राजाज्ञा थी।

सीता—पुण्याहवाचन के समय यज्ञमंडप में यजमान के पास कौन थी ?

राम—वह प्रतिमा—

सीता—सीता की प्रतिमा ? इस अयोध्या में जब सीता का आना मना था तो उसकी प्रतिमा को क्यों आने दिया गया यहाँ ?

राम—यज्ञकार्य के लिए—

सीता—सीता जीवित थी।

राम—राम के लिये वह कहाँ जीवित थी ?

सीता—इसीलिए उसकी प्रतिमा बनाई गई थी ? (राम चुप रहते हैं) जीवित रहते हुए भी मरण तुल्य हो गई थी इसलिए उसकी प्रतिमा बनाई गई ?

राम—इसलिए कि यज्ञकार्य के लिए यजमान-पत्नि की आवश्यकता होती है।

सीता—सजीव पति के साथ निर्जीव पत्नी से कैसे काम चला यज्ञ का ? ऋषि मुनियों ने सम्मति दे दी ?

राम—ऋषिजनों ने इसका विरोध नहीं किया।

सीता—सम्राट के भय से ?

राम—ऋषिमुनी क्यों डरने लगे सम्राट से ?

सीता—राम की पत्नी जीवित है ये तो जानते थे न वे ?—सर्वज्ञ होते हैं वे ऋषि-मुनि !—ये जानते हुए भी उन्होंने निर्जीव पत्नि क्यों स्वीकार की ?

राम—किसी ने भी प्रतिमा का विरोध नहीं किया।

सीता—आजीवन जिसने पति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया वह यह सीता आज्ञा होते ही आ जायगी क्या इस बात का विश्वास उनके पति को न था? अश्वमेध के सौभाग्य का अनुभव एक उत्तमांग करे—दूसरा अर्धांग क्यों वंचित किया जाय उससे? उसने क्या अप राध किया था?

राम—लोकापवाद! लोकनिंदा के कलंक से वह दूषित हो गई थी।

सीता—प्रत्यक्ष कर्म से नहीं! (राम चुप रहते हैं) लंका में रावने अग्नि दिव्य किया था क्या इस बात को निश्चंक नहीं जानते थे?

राम—निन्दा हो रही थी प्रवाद चल रहे थे नगरवासियों के मन कलुषित हो गए थे उसका परिणाम सामान्य जनता की नैतिकता पर हो रहा था। उस परिणाम के संपर्क से रामराज्य कलंकित हो रहा था।

सीता—वह निन्दा तो झूठी थी निराधार थी क्यों!

राम—झूठ हो या सच हो पर उसके परिणाम से बचते न बनता था।

सीता—फिर उसका निराकरण क्यों नहीं किया गया? वनवास का वह प्रसंग—सीता के अंक में राम विश्राम कर रहे थे। एक कौआ आया और सीता के वक्षस्थल पर चोंच मारने लगा। राम को क्रोध आया। उस कौवे पर उन्होंने इषीकास्त्र छोड़ा। उस अस्त्र ने कौवे का सारे त्रिभुवन में पीछा किया। अन्त में कौआ शरण आया और एक आँख खोकर उसने अपने प्राण बचाये तभी से कौआ एकाक्ष है। वह याद है न? (राम चुप) एक छोटा सा छिद्र देखकर चोंच मारने वाले कौवे को इतना कड़ा दण्ड देने वाले राम को चाहिये था कि छिद्रान्वेषण करने वाले इन असंख्य कौवों को—इन लोगों को—वैसा ही कड़ा दण्ड देते क्यों?

राम—वह राम वनवासी राम था स्वतन्त्र था। उसके मत्थे राज्य का भार न था—

सीता—अब राम के सामने राम राज्य का भार है। धोबियों के सन्तोष के लिए एक बीज को—आजीवन साथ रह कर सारा सुख दुःख भोगने वाले बीज को— निर्विकार होकर हत्या करना ही क्या राजनीति का आदर्श है? क्या यह न्याय है? (राम को चुप देख कर सीता वाल्मीकि के पास जाती है। वाल्मीकि से) क्षमा कीजिये गुरुदेव आपके सामने मैं यह अपराध कर रही हूँ। सम्राट् का—पति का अपमान हो रहा है मेरे हाथों मुझे क्षमा कीजिये। आपकी कृपा से ही मुझे यह अवसर मिला है। मुझे बिना कुछ बताए सीमा पार किया गया था। अपनी बात सुनाने का मुझे अवसर भी न मिला था इसलिए आज मैं अपनी अंतिम बात कह रही हूँ। लंका में अग्नि परीक्षा के समय ऐसा हुआ था। उस समय भी मुझ पर आग लगाई गई थी। फिर भी मैं अपनी बात सारे राक्षसों वानरों मनुष्यों देव-दानव गंधर्व किन्नरादि के सामने रख सकी थी। मुझे जो कुछ कहना था वह कह कर ही मैंने अग्नि-परीक्षा दी थी। इस बार ऐसी कौन बात हुई थी जो मुझे बिना बताए ही मेरी गर्भावस्था की कामनाओं को पूरा करने के बहाने मेरे साथ धोखा किया गया? लंका में अग्नि-परीक्षा से पूर्व जिस निर्भयता से मैंने उत्तर दिया था वैसा ही कड़ा उत्तर सुनना पड़ेगा क्या इस बात का पता राम को भय था?

राम—नहीं रघुकुलोत्पन्न राम किसी से नहीं डरता।

सीता—किसी से नहीं डरे? यह जानते हुए भी कि मैं गर्भवती हूँ क्यों आपने मुझ अकेली को वन में छोड़ दिया?

राम—लोकाराधना के लिए।

सीता—आपकी लोगों से डर के। लोग कौन? निन्दक ही तो? महापराक्रमी राम इन निन्दकों से क्यों डरे? (राम चुप) अयोध्या के सम्राट् से अब आप ही पूछिए न गुरुदेव।

वाल्मीकि—रामचन्द्र साक्षात्कार के कारण जिसे तुमने इस तरह मेरे आश्रम के निकट छोड़ दिया वह तुम्हारी पत्नी निष्कलंक है—

निष्पाप है। वह निष्पाप है इस बात का मुझे विश्वास था इसीलिए मने उसे आश्रय दिया। रामायण का गान करने वाले जो दो कुमार तुमने देखे हैं वे साधारण ऋषि-कुमार नहीं तुम्हारे ही पुत्र हैं। प्रचेतसा का यह दसवाँ पुत्र वाल्मीकि प्रतिज्ञा पूर्वक कहता है कि तुम अपनी इस पुत्रवती पत्नी का स्वीकार करो।

उर्मिला—क्या अब भी अयोध्या के सम्राट् को मेरी बहन के बारे में सन्देह है?

राम—मुझे कभी भी सन्देह न था। संदेह का निराकरण मेरा नहीं लोगों का होना चाहिए। मेरे प्रजाजनों का। राम ने जनता सेवक के नाते इस रामराज्य का जुआ वहन किया है उस जनता का समाधान होना चाहिए। सीता ने लंका में निवास किया मैंने उसे अपनाया फिर भी लोक-निंदा रुकी नहीं। लोकापवाद दुस्तर होता है इसीलिए मने इस भूमि कन्या का त्याग किया। इस अपराध के लिए मुझे क्षमा कीजिए, मुनिराज।

वाल्मीकि—सीता का स्वीकार करते ही तुम्हें मेरी क्षमा प्राप्त हो हो जायगी।

राम—पर पहले लोगों का समाधान होना चाहिए। सीता स्वयं सिद्ध ही पवित्र है न भगवन्? या आपके पवित्र आश्रम में रहने के कारण निर्दोष हुई है?

वाल्मीकि—बल्कि सीता के विचरने से ही मेरा आश्रम पवित्र हुआ है।

उर्मिला—(तड़पकर सामने आकर) यह अब क्या हो रहा है? शंका कुशंकाओं का यह बवण्डर क्यों उठा रखा है? एक बार स्वयं ही कहते हैं कि सीता निर्दोष है। फिर पूछते हैं कि आश्रम में रहने से तो कहीं वह निर्दोष नहीं हुई? यह शंका कुशंकाओं का तांडव क्यों मच रहा है आपके मन में? यदि आप सचमुच समझते हैं कि सीता निर्दोष है

तो यज्ञ मंडप में रखी हुई यह सीता की प्रतिमा फेंक दीजिए और इस चलती बोलती जीवित पत्नी का हाथ पकड़कर अश्वमेध पूरा कीजिए।

वाल्मीकि—शान्त हो वत्से शान्त हो।

उर्मिला—शान्त कैसे होऊँ ? निरन्तर विडम्बना हो रही है—राम की पत्नी की नहीं जनकसुता की नहीं अयोध्या की रानी की नहीं मेरी लाड़ली बहन की भी नहीं ! क्यों हो रही है यह स्त्री जाति की विडम्बना ? संदेह ! संदेह ! केवल स्त्री जाति पर ही क्यों संदेह किया जाता है ? क्या पुरुष सर्वदा निर्दोष होता है ? सूर्पणखा अत्यंत सुन्दर रूप धारण करके राम के आगे पहले आई थी—यह चाहती थी कि सीता को छोड़कर राम उसे अंगीकार करें, यह आप (लक्ष्मण की ओर देखकर) नहीं बताया करते हैं। उस समय वहाँ सीता उपस्थित नहीं थी !—क्यों ठीक है न ? (राम चुप) पर उस समय सीता ने भी कहीं आप पर संदेह किया ? कभी उल्लेख भी किया उस घटना का ? कितनी भिन्न होती है स्त्री जाति की मनोवृत्ति ! और आप पुरुष ! शंका ! शंका ! शंका ! हमेशा संदेह ! हमेशा शंकाएं ! आप पुरुषों को स्वयं अपने पर विश्वास नहीं होता !—

सीता—उर्मिला !—

उर्मिला—चुप न रहो। मैं इस बात का महत्व जानती हूँ। नारी जाति का मन किस तरह घुटता रहता है यह मिथिला में अनुभव कर चुकी हूँ तुम नहीं ! कई वर्षों से पड़ने वाले मेरे हृदय की हूक निकलने का आज अवसर मिला है—तुम्हारे कारण मिला है ! (राम से) बताइए, क्या अब भी आपके मन में संदेह है ?

राम—मुझे क्षमा करो उर्मिला लोकाराधना के गुरु भार के नीचे मैं दब गया हूँ दुर्बल हो गया हूँ। मैं विवश हूँ। अन्तिम बार यह देता हूँ कि माता इस महर्षि की आज्ञा से अपने पवित्र होने के बारे में यहाँ शपथ ले।

सीता—(वाल्मीकि से) सुना गुरुदेव ? अब मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

वाल्मीकि—मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ कि सीता निर्दोष है। निष्पाप है। यह निर्दोष प्रमाणित न हुई तो मेरी सहस्त्रों वर्षों की तपस्या निष्फल हो जायगी इससे अधिक मैं और क्या कहूँ ?

सीता—पर मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है ?

वाल्मीकि—अपनी रक्षा करने के लिए तुम स्वयं ही समर्थ हो।

सीता—(राम से) सुना ? मेरे गुरुदेव की आज्ञा सुन ली ? अब मैं क्या करूँ ?

राम—शपथ लो। दिव्य करो ! लोगों का समाधान होना चाहिए !

सीता—इस तरह कितनी बार दिव्य करूँ ? एक बार शपथ ली दिव्य किया केवल शब्दों से नहीं अग्नि दिव्य किया। दिव्य एक ही बार किया जाता है। शपथ एक ही बार ली जाती है। बार-बार शपथ लेने वाले के शब्द पर कोई कैसे विश्वास करेगा ? एक बार दिव्य करके भी यदि मैं बार-बार दिव्य करने लगूँ तो क्या मेरा अपने ऊपर से विश्वास नहीं उठ जायगा ?

राम—मैं विह्वलता से कह रहा हूँ—लोगों के समाधान के लिए और एक बार शपथ लो।

सीता—नहीं कभी नहीं मैं दुबारा कभी शपथ नहीं लूँगी। दुबारा दिव्य नहीं करूँगी। मैं स्वयं सिद्ध पवित्र होती हुई भी केवल इसीलिए कि लोगों को मुझ पर संदेह है मैं कभी भी दुबारा दिव्य नहीं करूँगी। आप राजा हैं इसलिए आपको लोगों की परवाह है। मैं स्त्री हूँ इसलिए मुझे स्त्री जाति का विचार है। स्त्री जाति के भविष्य की चिन्ता है, इस लिए कि मैं नारी हूँ। यदि इस समय मैंने पीछे हटकर दिव्य किया तो उसका फल भविष्य में समस्त स्त्री जाति को भोगना पड़ेगा। संदेह की यह कड़ी श्रृंखला से सारी नारी जाति झुलस उठेगी। मैं भी उतनी ही विह्वलता से

तो यज्ञ मण्डप में रखी हुई यह सीता की प्रतिमा फेंक दीजिए और इस चलती बोलती जीवित पत्नी का हाथ पकड़कर अश्वमेध पूरा कीजिए।

वाल्मीकि—शान्त हो वत्से शान्त हो।

उर्मिला—शान्त कैसे होऊँ ? निरन्तर विडम्बना हो रही है—राम की पत्नी की नहीं जनकसुता की नहीं अयोध्या की रानी की नहीं नारी साहसी बहन की भी नहीं ! क्यों हो रही है यह स्त्री जाति की विडम्बना ? संदेह ! संदेह ! केवल स्त्री जाति पर ही क्यों संदेह किया जाता है ? क्या पुरुष सर्वथा निर्दोष होता है ? शूर्पणखा अत्यंत सुन्दर रूप धारण करके राम के गले पड़ने आई थी—यह चाहती थी कि सीता को छोड़कर राम उसे अंगीकार करें, यह बात (लक्ष्मण की ओर देखकर) यही बताया करते हैं। उस समय वहाँ सीता उपस्थित नहीं थी !—क्यों ठीक है न ? (राम चुप) पर उस समय सीता ने भी कहीं आप पर संदेह किया ? कभी उल्लेख भी किया उस घटना का ? कितनी भिन्न होती है स्त्री जाति की मनोवृत्ति ! और आप पुरुष ! शंका ! शंका ! शंका ! हमेशा संदेह ! हमेशा शंकाएं ! आप पुरुषों को स्वयं अपने पर विश्वास नहीं होता !—

सीता—उर्मिला !—

उर्मिला—चुप न करो। मैं इस चुप का महत्त्व जानती हूँ। नारी जाति का दम किस तरह घुटता रहता है यह जितना मैं अनुभव कर चुकी हूँ तुम नहीं। कई वर्षों से घुटने वाले मेरे हृदय को फूट निकलने का आज अवसर मिला है—तुम्हारे कारण मिला है। (राम से) बताइए, क्या अब भी आपके मन में संदेह है ?

राम—मुझे क्षमा करो उर्मिला लोकाराधना के इस भार के नीचे मैं दब गया हूँ कुचल हो गया हूँ। मैं विवश हूँ। अन्तिम बार यही देखना है कि सीता इस जनता की साक्षी में अपने पवित्र होने के बारे में यहीं शपथ ले।

सीता—(वाल्मीकि से) सुना गुरुदेव ! अब मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

वाल्मीकि—मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ कि सीता निर्दोष है। निष्पाप है। यह निर्दोष प्रमाणित न हुई तो मेरी सहस्रों वर्षों की तपस्या निष्फल हो जायगी इससे अधिक मैं और क्या करूँ ?

सीता—पर मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है ?

वाल्मीकि—अपनी रक्षा करने के लिए तुम स्वयं ही समर्थ हो।

सीता—(राम से) सुना ? मेरे गुरुदेव की आज्ञा मैंने सुनी। अब मैं क्या करूँ ?

राम—शपथ लो। दिव्य करो ! लोगों का समाधान होना चाहिए।

सीता—इस तरह कितनी बार दिव्य करूँ ? [illegible] दिव्य किया, केवल बातों से नहीं अग्नि-दिव्य किया। फिर [illegible] एक ही बार किया जाता है। शपथ एक ही बार ली जाती है। बार बार शपथ खाने वाले के शपथ पर कोई कैसे विश्वास करेगा ? एक बार [illegible] भी यदि मैं बार-बार दिव्य करती रहूँ तो क्या मेरा अपने ऊपर से विश्वास नहीं उठ जायगा ?

राम—मैं विवशता से कह रहा हूँ—लोगों के समाधान के लिए और एक बार शपथ लो।

सीता—नहीं, कभी नहीं मैं दुबारा कभी शपथ नहीं लूँगी। दुबारा दिव्य नहीं करूँगी। मैं स्वयं सिद्ध पवित्र होती हुई आज केवल इसीलिए कि लोगों को मुझ पर संदेह है, मैं कभी भी दुबारा दिव्य नहीं करूँगी। आप राजा हैं इसलिए आपको लोगों की परवाह है। मैं स्त्री हूँ इसलिए मुझे स्त्री जाति का विचार है। स्त्री जाति के भविष्य की चिन्ता है इस-लिए कि मैं नारी हूँ। यदि इस समय मैंने फिर झुककर दिव्य किया तो उसका फल भविष्य में समस्त स्त्री जाति को भोगना पड़ेगा। [illegible] बड़ी नम्रता से सारी नारी जाति झुकती रहेगी। मैं भी उतनी ही विवशता से

तो यज्ञ मंडप में रक्खी हुई यह सीता की प्रतिमा फेंक दीजिए और इस असली बोलती जीवित पत्नी का हाथ पकड़कर अश्वमेध पूरा कीजिए।

वाल्मीकि—शान्त हो वत्से शान्त हो।

उर्मिला—शान्त कैसे होऊँ? निरन्तर विडम्बना हो रही है—राम की पत्नी की नहीं जनकसुता की नहीं अयोध्या की रानी की नहीं मेरी लाड़ली बहन की भी नहीं! क्यों हो रही है यह स्त्री जाति की विडम्बना? संदेह! संदेह! केवल स्त्री जाति पर ही क्यों संदेह किया जाता है? क्या पुरुष सर्वदा निर्दोष होता है? शूर्पणखा अत्यंत सुन्दर रूप धारण करके राम के गले पड़ने आई थी—वह चाहती थी कि सीता को छोड़कर राम उसे अंगीकार करें, यह बात (लक्ष्मण की ओर देखकर) यही बतलाया करते हैं। उस समय वहाँ सीता उपस्थित नहीं थी!—क्यों ठीक है न? (राम चुप) पर उस समय सीता ने भी कहीं आप पर संदेह किया? कभी उल्लेख भी किया उस घटना का? कितनी निर्मल होती है स्त्री जाति की मनोवृत्ति! और आप पुरुष! शंका! शंका! शंका! हमेशा संदेह! हमेशा शंकाएं! आप पुरुषों का स्वयं अपने पर विश्वास नहीं होता!—

सीता—उर्मिला!—

उर्मिला—चुप न करो। मैं इस क्षण का महत्त्व जानती हूँ। नारी जाति का दम किस तरह घुटता रहता है यह जितना मैं अनुभव कर चुकी हूँ तुम नहीं। कई वर्षों से घुटने वाले मेरे हृदय को फूट निकलने का आज अवसर मिला है—तुम्हारे कारण मिला है! (राम से) बताइए, क्या अब भी आपके मन में संदेह है?

राम—मुझे क्षमा करो उर्मिला लोकाराधना के दुःख भार के नीचे मैं दब गया हूँ दुर्बल हो गया हूँ। मैं विवश हूँ। अन्तिम बार चाहता हूँ कि सीता इन महर्षि की आज्ञा से अपने पवित्र होने के बारे में यहीं शपथ लें।

सीता—(वाल्मीकि से) सुना गुरुदेव? अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?

वाल्मीकि—मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ कि सीता निर्दोष है। निष्पाप है। यह निर्दोष प्रमाणित न हुई तो मेरी सहस्रों वर्षों की तपस्या निष्फल हो जायगी। इससे अधिक मैं और क्या कहूँ?

सीता—पर मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है?

वाल्मीकि—अपनी रक्षा करने के लिए तुम स्वयं ही समर्थ हो।

सीता—(राम से) सुना? मेरे गुरुदेव की आज्ञा सुन ली? अब मैं क्या करूँ?

राम—शपथ लो। दिव्य करो। लोगों को विश्वास होना चाहिए।

सीता—इस तरह कितनी बार दिव्य करूँ? दिव्य किया केवल शब्दों से नहीं अग्नि-दिव्य किया। एक बार शपथ भी किया जाता है। शपथ एक ही बार ली जाती है। दिव्य एक ही बार के शपथ पर कोई कैसे विश्वास करेगा? एक बार दिव्य करके भी यदि मैं बार-बार दिव्य करने लगूँ तो क्या मेरा अपने आप से विश्वास नहीं उठ जायगा?

राम—मैं विह्वलता से कह रहा हूँ—सीते! [illegible] के लिए और एक बार शपथ लो।

सीता—नहीं कभी नहीं। मैं दुबारा कभी शपथ नहीं लूँगी। दुबारा दिव्य नहीं करूँगी। मैं स्वयं दिव्य परीक्षा दे चुकी हूँ [illegible] दुबारा कि लोगों को मुझ पर संदेह है मैं कभी भी दुबारा दिव्य नहीं [illegible]। आप राजा हैं इसलिए आपको लोगों की परवाह है। मैं स्त्री [illegible]। मुझे स्त्री जाति का विचार है। स्त्री जाति के भविष्य की चिन्ता [illegible] लिए कि मैं नारी हूँ। यदि इस समय मैंने पीछे हटकर दिव्य [illegible] उसका फल भविष्य में समस्त स्त्री जाति को भोगना पड़ेगा। [illegible] इसी अभिलाषा से सारी नारी जाति मुझसे घटेगी। मैं भी उतनी ही [illegible]

तो यज्ञ मंडप में रखी हुई यह सीता की प्रतिमा फेंक दीजिए और इस जलती बोलती जीवित पत्नी का हाथ पकड़कर अश्वमेध पूरा कीजिए।

वाल्मीकि—शान्त हो वत्से शान्त हो।

उर्मिला—शान्त कैसे होऊँ? निरन्तर विडम्बना हो रही है—राम की पत्नी की नहीं जनकसुता की नहीं अयोध्या की रानी की नहीं मेरी लाड़ली बहन की भी नहीं! क्यों हो रही है यह स्त्री जाति की विडम्बना? संदेह! संदेह! केवल स्त्री जाति पर ही क्यों संदेह किया जाता है? क्या पुरुष सर्वदा निर्दोष होता है? शूर्पणखा अत्यंत सुन्दर रूप धारण करके राम के गले पड़ने आई थी—वह चाहती थी कि सीता को छोड़कर राम उसे अंगीकार करें यह बात (लक्ष्मण की ओर देखकर) नहीं बताया करते हैं। उस समय वहाँ सीता उपस्थित नहीं थी!—क्यों ठीक है न? (राम चुप) पर उस समय सीता ने भी कहीं आप पर संदेह किया? कभी उल्लेख भी किया उस घटना का? कितनी निर्मल होती है स्त्री जाति की मनोवृत्ति! और आप पुरुष! शंका! शंका! शंका! हमेशा संदेह! हमेशा शंकाएं! आप पुरुषों को स्वयं अपने पर विश्वास नहीं होता!—

सीता—उर्मिला!—

उर्मिला—चुप न रहो। मैं इस बात का महत्त्व जानती हूँ। नारी जाति का रूप किस तरह घुटता रहता है यह जितना मैं अनुभव कर चुकी हूँ तुम नहीं। कई वर्षों से घुटने वाले मेरे हृदय को कुछ निकलने का आज अवसर मिला है—तुम्हारे कारण मिला है। (राम से) बताइए, क्या अब भी आपके मन में संदेह है?

राम—मुझे क्षमा करो उर्मिला लोकाराधना के इस भार के नीचे मैं दब गया हूँ दुर्बल हो गया हूँ। मैं विवश हूँ। अन्तिम बार कहे देता हूँ कि सीता इन महर्षि की आज्ञा से अपने पवित्र होने के बारे में शपथ ले।

सीता—(वाल्मीकि से) सुना गुरुदेव ? अब मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

वाल्मीकि—मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ कि सीता निर्दोष है । निष्पाप है । यह निर्दोष प्रमाणित न हुई तो मेरी सहस्त्रों वर्षों की तपस्या निष्फल हो जायगी इससे अधिक मैं और क्या कहूँ ?

सीता—पर मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है ?

वाल्मीकि—अपनी रक्षा करने के लिए तुम स्वयं ही समर्थ हो ।

सीता—(राम से) सुना ? मेरे गुरुदेव की आज्ञा सुन ली ? अब मैं क्या करूं ?

राम—शपथ लो । दिव्य करो । लोगों का समाधान होना चाहिए ।

सीता—इस तरह कितनी बार दिव्य करूँ ? एक बार शपथ ली दिव्य किया केवल शब्दों से नहीं अग्नि दिव्य किया । दिव्य एक ही बार किया जाता है । शपथ एक ही बार ली जाती है । बार-बार शपथ लेने वाले के शब्द पर कोई कैसे विश्वास करेगा ? एक बार दिव्य करके भी यदि मैं बार-बार दिव्य करने लगूं तो क्या मेरा अपने ऊपर से विश्वास नहीं उठ जायगा ?

राम—मैं विह्वलता से कह रहा हूँ—लोगों के समाधान के लिए और एक बार शपथ लो ।

सीता—नहीं कभी नहीं मैं दुबारा कभी शपथ नहीं लूंगी । दुबारा दिव्य नहीं करूँगी । मैं स्वयं सिद्ध पवित्र होती हुई भी केवल इसीलिए कि लोगों को मुझ पर संदेह है, मैं कभी भी दुबारा दिव्य नहीं करूंगी । आप राजा हैं इसलिए आपको लोगों की परवाह है । मैं स्त्री हूँ इसलिए मुझे स्त्री जाति का विचार है । स्त्री जाति के भविष्य की चिन्ता है इस लिए कि मैं नारी हूँ । यदि इस समय मैंने पीछे हटकर दिव्य किया तो उसका फल भविष्य में समस्त स्त्री जाति को भोगना पड़ेगा । संदेह की यह कड़ी ज्वाला से सारी नारी जाति झुलस उठेगी । मैं भी कहती हूँ विह्वलता से

कह रही हूँ सम्राट् कि आप मुझे शपथ लेने का अनुरोध न कीजिए।

राम—रामराज्य की प्रतिष्ठा के लिए मैं तुम से प्रार्थना कर रहा हूँ—

सीता—राम राज्य की प्रतिष्ठा ! रामराज्य की प्रतिष्ठा से भी मैं स्त्री जाति की प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्वपूर्ण समझती हूँ ! राम राज्य ? कैसा रामराज्य ! रामराज्य था वनवास में। वहाँ वैभव की ऐसी प्रतिष्ठा न थी। अधिकार की महत्ता न थी। वह केवल रामराज्य न था सीताराम का राज्य था इसीलिए ऋषि-मुनियों की तपस्या निर्विघ्न हो सकी सीताराम का राज्य था इसीलिए राक्षसों का संहार हो सका दुर्जनों का नाश होकर सज्जनों की प्रतिष्ठा प्रस्थापित हो सकी। रावण का साम्राज्य नष्ट होकर विभीषण लंका का राजा बना तथा पृथ्वी निष्कंटक हुई वह इसलिए कि वह सीताराम का राज्य था। सीता की विरूप करने का जो यह प्रसंग बार-बार आ रहा है वह भी इसीलिए कि यह रामराज्य है—नर राज्य है ! स्त्री जाति का यह अपमान यह भूमि कन्या कदापि सहन नहीं करेगी। राजा रामचन्द्र मैं विरूप कर रही हूँ पर अपनी पवित्रता की प्रस्थापना के लिए नहीं ! विरूप कर रही हूँ स्त्री जाति के अपमान को मिटा डालने के लिए। मैं चाहती हूँ सीताराम का राज्य। सीताराम के राज्य में सीता चाहती हूँ। पतितपावन के नाम से जिसका जयजयकार हो रहा है वह राम नहीं सीताराम है सीताराम के उस राज्य की छत्र छाया बिना मेरे लिए जीना असम्भव हो रहा है इसीलिए विरूप कर रही हूँ। यदि मैंने रघुकुलोत्तम राम के सिवाय अन्य किसी भी पुरुष का चिंतन नहीं किया है मनसा वाचा और कर्मणा से एक राम की ही उपासना की है तो यह विष्णु पत्नी—मेरी माता—यह भूमाता अपनी अग्निसम कन्या को इसी क्षण स्थान देगी। भूमि से उत्पन्न यह आत्मा भूमि में ही समा जायगी। जय सीताराम !

[सीता नीचे बैठकर जमीन पर मस्तक टेकती है। चारों ओर

अँधेरा हो जाता है। प्रकाश की एक काँपती ज्योति थरथराहट के साथ चमकती है और फिर से उजाला हो जाता है। ऊर्मिला और लक्ष्मण दौड़ते हुए सामने आते हैं।]

ऊर्मिला—गई! राम की चित्शक्ति अनंत में विलीन हो गई!

राम—हा सीते! हा सीते!

॥ ॐ तत्सत् ॥